2

प्रारंभिक और माध्यमिक स्तर पर पाठ्यचर्या संयोजन

संदर्भ

भारतीय विद्यालयी शिक्षा व्यवस्था में प्रारंभिक और माध्यमिक स्तर की शिक्षा को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है और इसीलिए इस मुख्य क्षेत्र की शिक्षा पर *प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या : एक रूपरेखा,* 1988 में विशेष बल दिया गया था, किंतु अब उस पर नए सिरे से विचार करने की आवश्यकता है। देश में शिक्षा के क्षेत्र में जो अनुभव प्राप्त हुए हैं, उनके प्रकाश में इनमें से कुछ की तो पुनर्रचना और कुछ का पुनःप्रतिपादन करना होगा। आसपास घटित होने वाले परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में कुछ नए आवश्यक क्षेत्रों को भी जोड़ना ज़रूरी हो सकता है। वर्तमान परिदृश्य में निम्नलिखित पर विशेष ज़ोर देना होगा :

- व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय और आध्यात्मिक मूल्यों, जैसे– स्वच्छता और समय की पाबंदी, सदाचार, सहिष्णुता और न्याय, राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति गर्व, कानून-व्यवस्था के प्रति सम्मान और सत्यप्रियता का समावेश और उनकी निरंतरता,
- गरीबी, अज्ञानता, अस्वस्थता, जातिवाद, दहेज, अस्पृश्यता और हिंसा को समाप्त करना और समता, स्वास्थ्य, शांति और समृद्धि को सुनिश्चित करना,
- चिंतन, अनुभव और नवाचारों को, जो कि भारतीय परंपरा और लोकाचार की बुनियाद में हैं, वैश्विक विचारों से जोड़ना,
- पूरे देश में विद्यालयी संरचना अर्थात् 10+2+3 में एकरूपता स्थापित करना,
- माध्यमिक स्तर के अंत तक सभी शिक्षार्थियों को ऐसी व्यापक सामान्य शिक्षा देना जो उन्हें बुनियादी जीवन कौशलों का उच्चस्तरीय बौद्धिक स्तर (आई.क्यू.), संवेगात्मक स्तर (ई.क्यू.) और आध्यात्मिक स्तर (एस.क्यू.) अर्जित करने में सहायक हो,

- प्रारंभिक और माध्यमिक स्तर के लिए अध्ययन की सामान्य योजना बनाना जिसमें 'कैसे सीखा जाए' के कौशल पर ज़ोर हो और जो विषयवस्तु एवं सीखने के तरीकों की दृष्टि से छात्रों के लिए उपयुक्त हो। ध्यान रहे कि इस स्तर के छात्रों में विशेष आवश्यकता वाले छात्र भी हैं,
- विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरों पर मौलिक कर्त्तव्यों और पाठ्यचर्या के केंद्रिक घटकों का समावेश करना,
- मानव अधिकारों का समावेश करना जिनमें बच्चों और विशेष रूप से बालिकाओं के अधिकार भी शामिल होंगे,
- सभी स्तरों पर ज्ञान, समझ और कौशल अर्जित करने के लिए न्यूनतम अधिगम स्तर सुनिश्चित करना जो छात्रों की योग्यताओं और समाजगत संदर्भों के अनुरूप हों,
- विद्यालयी शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर विषयवस्तु के चयन, शिक्षण और प्रविधियों के संदर्भ में स्वतंत्रता, लचीलापन, प्रासंगिकता और पारदर्शिता सुनिश्चित करना,
- ज्ञान के विभिन्न आयामों में सभी छात्रों में बहुविध प्रतिभा और सृजनात्मकता का पोषण करना एवं उनकी निरंतरता कायम रखना,
- सूचना आधारित और शिक्षक-केंद्रित शिक्षण से हटकर प्रक्रिया-केंद्रित और छात्र मित्रवत शिक्षा पर ज़ोर देना, और
- मूल्यांकन की प्रतिसंवेदी और सहायक प्रणाली विकसित करना।

2.1 मूल्य शिक्षा

चूँकि भारत आध्यात्मिक सहअस्तित्व का एक सर्वाधिक उदात्त प्रयोग है, अतः सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों एवं धर्मों के विषय में शिक्षा पूरी तरह से घर और समुदाय के भरोसे नहीं छोड़ी जा सकती। ऐसा लगता है कि विद्यालयी शिक्षा ने भाषा में मूलभूत मूल्यों के संबंध में तटस्थता का भाव विकसित कर लिया है और समुदाय के पास या तो समय नहीं है अथवा उसकी यह रुचि ही नहीं है कि वह सही भावना के साथ धर्मों के बारे में जाने। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि भारतीय विद्यालयी पाठ्यचर्या में मूलभूत मूल्यों को अंतर्निहित करना तथा देश के सभी प्रमुख धर्मों के संबंध में चेतना को एक केंद्रीय घटक के रूप में शामिल किया जाए।

किसी भी स्तर पर मूल्य शिक्षा और धर्मों के बारे में शिक्षा अलग से अध्ययन या परीक्षा के

विषय नहीं होंगे। इन दोनों का समन्वय समस्त शैक्षिक-विषय क्षेत्रों और सह-शैक्षिक विषय क्षेत्रों में इतने औचित्य के साथ होगा कि उनमें निहित उद्देश्यों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कक्षाओं में, सभास्थलों पर, खेल के मैदानों में, सांस्कृतिक केंद्रों एवं ऐसे ही अन्य स्थानों पर प्राप्त किया जा सके।

विद्यालयी शिक्षा के बहुत प्रारंभिक चरण में ही मूल्य शिक्षा के प्रसार संबंधी एक समग्र कार्यक्रम को विद्यालयी दिनचर्या के नियमित अंग के रूप में शुरू करना अनिवार्य है। संपूर्ण शिक्षा प्रक्रिया ऐसी हो कि बालक-बालिकाएँ इस योग्य बन जाएँ कि वे 'उत्तम' को जानें, 'उत्तम' से प्रेम करें और 'उत्तम' कार्य करें तथा एक दूसरे के प्रति सहनशील नागरिकों के रूप में विकसित हों। माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर धर्मों की फ़िलासफ़ी का तुलनात्मक अध्ययन शुरू किया जा सकता है।

2.2 समान केंद्रिक घटक

राष्ट्रीय पहचान को सुदृढ़ करने की आवश्यकता अब पहले से कहीं अधिक महसूस की जा रही है। इसलिए पाठ्यचर्या के माध्यम से भारतीय संविधान में निहित मूल्यों का पोषण कर राष्ट्रीय एकता और सामाजिक-सुसंबद्धता को प्रोत्साहित एवं विकसित करने का दृढ़ता के साथ पक्ष लिया जा रहा है। इस दृष्टि से *राष्ट्रीय शिक्षा नीति,* 1986 के द्वारा चिह्नित दस केंद्रिक घटकों को पुनः प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है। ये घटक इस प्रकार हैं– भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, संवैधानिक दायित्व, राष्ट्रीय पहचान के पोषण के लिए आवश्यक विषयवस्तु, भारत की सामान्य सांस्कृतिक विरासत, समतावाद, लोकतंत्र और पंथ निरपेक्षता, स्त्री-पुरुष समानता, पर्यावरण का संरक्षण, प्रगति में बाधक सामाजिक व्यवधान को समाप्त करना, छोटे परिवार का मानक अपनाना और वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना।

भारतीय संविधान के भाग IVअ के अनुच्छेद 51अ में उल्लिखित मौलिक कर्त्तव्यों को भी केंद्रिक घटकों में शामिल करना होगा। इनके अनुसार भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह–

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे,

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में सँजोए रखे और उनका पालन करे,

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे,

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे,

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हो,

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे,

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे,

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे,

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे, और

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू सके।

इन केंद्रिक घटकों को विद्यालयी पाठ्यचर्या में समुचित रूप से समाविष्ट करना आवश्यक है। प्रयत्न यह है कि ये घटक राष्ट्रीय भागीदारी की दृष्टि और मूल्यों को उत्पन्न करने में सहायक हों और ऐसे लोकाचार और मूल्य प्रणाली का निर्माण करें जिनमें भारतीय पहचान को पुष्ट किया जा सके।

2.3 स्वदेशी पाठ्यचर्या की ओर

शिक्षा को सार्थक अनुभव बनाने के लिए उसे भारतीय संदर्भ से जोड़ना होगा। अब पहले से कहीं अधिक इस तथ्य का एहसास हुआ है कि जो कुछ विदेशों में घटित हो रहा है, केवल उसका आयात करके या उसे उधार लेकर अथवा विदेशों में उठने वाली समस्याओं का निराकरण करने में अपनी दक्षता दिखा कर भारत बौद्धिक स्तर से फलफूल नहीं सकता।

मूर्तरूप से चिंतन में यह बदलाव अपने स्वदेशीपन की परंपरा में निहित चिंतन, अनुभव और नवाचार पर आधारित पाठ्यचर्या निर्माण की प्रणाली विकसित करने की माँग करता है। ऐसा करने के लिए देश की सांस्कृतिक बहुलता और भारतीय समाज के विभिन्न क्षेत्रों और वर्गों से प्राप्त बुद्धिमत्ता और अनुभव के विशाल भंडार पर पर्याप्त ध्यान देना होगा। इसका मतलब यह भी हो सकता है कि स्वास्थ्य, जल-प्रबंधन, जनसंख्या विस्फोट आदि से जुड़े मुद्दों के समस्या-निवारण में पारंपरिक ज्ञान-प्रणालियों और तरीकों का उपयोग किया जाए।

ऐसे समय में जबकि नीम और हल्दी जैसे पदार्थों को विश्वव्यापी मान्यता और उन्हें पेटेंट करने की कोशिश हो रही है, तो इस प्रकार की जानकारी शिक्षार्थियों के ज्ञान का अभिन्न अंग बननी ही चाहिए। यह भी वांछनीय है कि शिक्षार्थियों को ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में अतीत में की गई देश की प्रगति से भी परिचित कराया जाए। इसके अतिरिक्त लोक-संस्कृतियों का ज्ञान और उनका आस्वाद, लोकगीत, पारंपरिक नृत्य शैलियों, वेशभूषाओं एवं वाद्ययंत्रों को विद्यालयी पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बनाया जाना चाहिए।

2.4 न्यूनतम अधिगम स्तर

जाति, धर्म, स्थान और लिंग के भेदभाव से मुक्त सभी छात्रों को तुलनीय स्तर की शिक्षा देने के लिए *न्यूनतम अधिगम स्तरों (एम.एल.एल.)* की अवधारणा एक बुनियादी सरोकार के रूप में उभरी है। गुणवत्ता को समानता से जोड़ने के प्रयास के रूप में विद्यालयी शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर आवश्यक अधिगम स्तरों की पहचान करने की ज़रूरत पैदा हुई है। यह समाज के सभी वर्गों के शिक्षार्थियों की, जिनमें सुविधाहीन और वंचित बच्चे, बीच में विद्यालय छोड़ देने वाले और कामकाजी बच्चे एवं लड़कियाँ शामिल हैं, विकासात्मक आवश्यकताओं की दृष्टि से अति आवश्यक है। इन आवश्यक अधिगम स्तरों को ही न्यूनतम अधिगम स्तर का नाम दिया गया है। न्यूनतम अधिगम स्तर सभी बच्चों द्वारा समान रूप से अर्जित करने होंगे। चूँकि एम.एल.एल. दिशा-बोध कराते हैं और कुछ हद तक जवाबदारी सुनिश्चित करते हैं, इसलिए इन्हें विद्यालयी सुधार के कार्यक्रम-निर्माण के लिए प्रभावशाली साधन माना गया है। विद्यालय या शिक्षा प्रणाली की गुणवत्ता वास्तव में छात्रों के योग्यता निष्पादन की क्षमताओं के संदर्भ में परिभाषित करनी होगी। न्यूनतम अधिगम स्तरों के अधिगम परिणामों को स्पष्ट करने के लिए इनका निर्वचन कई तरह से किया जा सकता है। इनमें से एक महत्वपूर्ण तरीका न्यूनतम अधिगम स्तरों को दक्षताओं के रूप में परिभाषित करना है। कोई भी प्रणाली क्यों न अपनाई जाए, न्यूनतम अधिगम स्तर की विशिष्टता का उद्देश्य अधिगम उपलब्धियों को बढ़ाना है। उन्हें योग्यता-निष्पादन के लक्ष्य के रूप में अपनी उपयोगिता जहाँ शिक्षकों के लिए सिद्ध करनी होगी वहीं व्यवस्था के लिए भी प्रतिफल संकेतक बनना होगा। इसके अनुसार, प्रासंगिकता और कार्यात्मकता के अतिरिक्त न्यूनतम अधिगम स्तरों को उपलब्धि-संप्राप्ति तथा समझ में आने वाले और मूल्यांकन किए जा सकने योग्य गुणों से संपन्न होना चाहिए। अधिगम या सीखने को एक सातत्य या निरंतरता के रूप में देखना होगा जिसमें इकाइयाँ कार्यात्मक तरीके से आकर शृंखलाबद्ध होती हैं। सातत्य के इस उपागम से छात्रों की क्रमबद्ध प्रगति में सहायता मिलनी चाहिए जिससे दूसरी इकाई की ओर जाने के पूर्व प्रत्येक इकाई की विशेष दक्षताओं की शृंखला पर छात्र प्रवीणता या मास्टरी प्राप्त कर सकें। तब जाकर प्रत्येक इकाई को सीखना आनंददायी और सार्थक होगा।

न्यूनतम अधिगम स्तर की अवधारणा खंडित न होकर पूर्णता की अवधारणा है। न्यूनतम अधिगम स्तर को प्रत्येक स्तर विशेष के अंत में उपलब्ध अधिगम प्रतिफल के रूप में देखना होगा। उनकी विशेषताओं के विस्तृत विवरण और उनकी श्रेणीवार शृंखलाबद्धता को किसी कठोर निर्देश या निर्धारण के रूप में नहीं लेना चाहिए। इस अवधारणा में भी काफ़ी लचीलापन है। अधिगम प्रतिफलों को क्रमबद्ध ढंग से जमाने का कौशल इस प्रकार आज़माया जाना चाहिए कि उनमें संतुलित तरीके से विश्लेषणात्मक एवं संश्लेषणात्मक प्रक्रियाओं का समावेश हो। इसके अलावा 'अधिगम या सीखना' को 'कौशल', 'गुणवत्ता', 'दृष्टिकोण' और 'मूल्यों' के भी विराट परिप्रेक्ष्य में समझना होगा। इस प्रकार न्यूनतम अधिगम स्तरों में संज्ञानात्मक, क्रियात्मक और संवेगात्मक, तीनों से जुड़ी शिक्षा में अधिगम प्रतिफल समाहित होंगे। न्यूनतम अधिगम स्तर को परिभाषित करने पर बल समेकित रूप से सीखने और मूल्यांकन करने के तत्वों को रेखांकित करने के लिए है, जिससे प्रभावी निदानात्मक हस्तक्षेपों और आकलन प्रक्रियाओं को सुनिश्चित किया जा सके। इस प्रकार न्यूनतम अधिगम स्तर मात्र छात्र की प्रगति या मूल्यांकन निर्देश के ही संकेतक नहीं हैं, बल्कि वे तो शिक्षण को उपयुक्त ढंग से क्रमबद्ध बनाने, समुचित कक्षा-शिक्षण-प्रक्रियाओं को अपनाने और वांछित आकलन तकनीकों को लागू करने में सहायक होते हैं। वे शिक्षक को इस योग्य बनाते हैं कि वह एक ओर तो उपचारात्मक शिक्षण कर सके और दूसरी ओर प्रत्येक शिक्षार्थी की आवश्यकतानुसार ज्ञान-संवर्धन कार्यक्रम आयोजित कर सके। इससे शिक्षकों को कुछ स्पष्ट सूत्र मिलते हैं जिनसे वे साथियों के बीच शिक्षण, लक्ष्य निर्देशित शिक्षण तथा स्वशिक्षण को सचेत और संयुक्त तरीके से आयोजित कर सकें।

न्यूनतम अधिगम प्रणाली प्रवीणता स्तर के अधिगम के तत्वों, बाल-केंद्रित शिक्षा, गतिविधि आधारित शिक्षण, सतत और व्यापक मूल्यांकन, निदानात्मक और उपचारात्मक शिक्षण, विभेदक व्यवहार और कार्यात्मक शोध (एक्शन रिसर्च) पर आधारित है। सभी के लिए इन तमाम तत्वों के अभ्यास की आवश्यकता गुणवत्तायुक्त प्रारंभिक शिक्षा के लक्ष्य को उपलब्ध करने के लिए है।

विभिन्न स्तरों पर न्यूनतम अधिगम स्तर लागू करने और समान अध्ययन-योजना अपनाने पर ज़ोर दिया गया है। इसके साथ-साथ पाठ्यचर्या के कक्षाई उपयोग के लिए कार्य-योजना की रचना के चयन में लचीलापन भी आवश्यक है। इससे अधिगम शिक्षार्थी की आवश्यकता और पर्यावरण के संदर्भ में प्रासंगिक होगा और शिक्षकों तथा विद्यालय एवं स्थानीय शैक्षिक अधिकारियों द्वारा पहल और प्रयोग करने के मौके मिलेंगे। पाठ्यचर्या क्रियान्वयन की पद्धति और दृष्टिकोण में लचीलेपन की गुंजाइश का इस्तेमाल विभेदक पाठ्यक्रमों और ऐसे ही अन्य उपायों के लिए नहीं किया जाएगा ताकि देश के विभिन्न भागों के शैक्षिक स्तरों में विषमता पैदा होने का खतरा हो।

2.5 शिक्षा के सामान्य उद्देश्य

शिक्षा मनुष्य को अज्ञान, अभाव तथा दुख के बंधनों से मुक्त करती है और उसे अहिंसक एवं शोषण-विहीन सामाजिक व्यवस्था की ओर ले जाती है। अतः विद्यालयी पाठ्यचर्या के उद्देश्य हैं कि वे शिक्षार्थियों को ज्ञान अर्जित करने, समझ विकसित करने, कौशलों को विकसित करने, सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने एवं व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए उपयोगी मूल्य और आदतें अपनाने के योग्य बनाए। युवावर्ग इस देश की अत्यंत मूल्यवान निधि हैं, इसलिए शिक्षा के माध्यम से क्षमताएँ बढ़ाने के लिए उनका सबलीकरण आवश्यक है। इसलिए प्रतिमानों को बदलना आवश्यक है ताकि पाठ्यचर्या में प्रक्रिया और विषयवस्तु की अंतर्क्रिया को महत्त्व दिया जा सके। इसके अतिरिक्त छात्रों के अंतरस्थ मूल्यों और संवेगात्मक बुद्धि का विकास भी एक महत्त्वपूर्ण पहलू है।

इसलिए विद्यालयी पाठ्यचर्या से छात्रों में निम्नांकित के विकास और उत्कर्ष में सहायता मिलनी चाहिए :

- भाषा की योग्यताएँ, जैसे– सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना और सोचना तथा मौखिक और दृश्य संप्रेषण-कौशल जो सामाजिक जीवन और दिन-प्रतिदिन के क्रियाकलापों में प्रभावी भागीदारी के लिए आवश्यक है,
- गणितीय योग्यताएँ जो तार्किक बुद्धि का विकास करे और शिक्षार्थियों को गणितीय क्रियाओं को दैनिक जीवन में लागू करने में सहायता करे,
- वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास जिसमें खोज या अनुसंधान-भावना, समस्या-हल, प्रश्न करने का साहस और वस्तुनिष्ठता जैसे गुण विद्यमान हों जो भ्रम, अंधविश्वास और भाग्यवाद को समाप्त करने की दिशा में प्रवृत्त करे, इसके साथ ही साथ भारतीय परंपरा में रचे-बसे स्वदेशी ज्ञान को संपुष्ट करते हुए बनाए रखे,
- पर्यावरण के प्राकृतिक और सामाजिक दोनों पक्षों, उनकी अंतर्क्रियात्मक प्रक्रियाओं और उनसे संबद्ध समस्याओं की समझ विकसित करे और ऐसे तरीके और साधन बताए कि पर्यावरण का संरक्षण किया जा सके,
- देश के विभिन्न भागों के भूखंडों तथा वहाँ के जनजीवन की विविधता और भारत की सामासिक संस्कृति के प्रति समझ पैदा करे,
- देश के स्वतंत्रता-संग्राम और सामाजिक पुनरुत्थान में सभी वर्गों और क्षेत्रों के स्वतंत्रता सेनानियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और ग्रामीण, आदिवासी और समाज के कमज़ोर

तबकों, खासकर उत्तर-पूर्व और अंदमान-निकोबार द्वीप-समूहों के लोगों के बलिदान एवं योगदान के प्रति सराहना की भावना पैदा करे और उनके आदर्शों के अनुसरण की प्रेरणा प्रदान करे,

- परिवर्तनमूलक प्रौद्योगिकी और देश की परंपरा और विरासत की निरंतरता के बीच संतुलित समन्वय की सही समझ उत्पन्न करे,
- राष्ट्रीय प्रतीकों का ज्ञान और उनके प्रति सम्मान पैदा करे तथा राष्ट्रीय अस्मिता एवं एकता जैसे आदर्शों के प्रति आकांक्षा और संकल्प प्रकट करने के लिए प्रेरित करे,
- *वसुधैव कुटुंबकम्* की भावना से युक्त देशभक्ति और राष्ट्रीयता की गहन अनुभूति पैदा करे,
- देश के संदर्भ में भूमंडलीकरण, उदारीकरण और स्थानीयता के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों के संबंध में उचित समझ विकसित करे,
- व्यक्तिगत, सामाजिक, नैतिक, राष्ट्रीय और आध्यात्मिक मूल्यों और सहवर्ती गुणों का विकास करे जो किसी व्यक्ति को मानवीय और सामाजिक रूप से प्रभावशाली बनाते हैं और जीवन को सार्थकता एवं दिशा देते हैं,
- भौतिक और मानसिक रूप से स्फूर्त और मज़बूत बनाने के लिए आवश्यक ज्ञान, दृष्टिकोण और आदतों का विकास करे,
- ऐसे गुणों और विशेषताओं का विकास करे जो स्व-शिक्षण, आत्म-निर्देशित शिक्षण और आजीवन शिक्षण के साथ समाज की रचना कर सके,
- ऐसी क्षमताओं का विकास करे जो न केवल सूचना-विश्लेषण करे बल्कि उन्हें ठीक से समझे, उन पर विचार करे, उन्हें आत्मसात करे और उनके प्रति अंतर्दृष्टि का विकास करे,
- उत्पादकता-वृद्धि, कार्य-संतोष की भावना, अर्थ-उत्पादन प्रणाली के लिए आवश्यक कठोर-परिश्रम की तत्परता, उद्यमशीलता और मानवीय श्रम के प्रति सम्मान जैसे मूल्यों का विकास करे,
- पूर्व व्यावसायिक/व्यावसायिक कौशलों को अर्जित करे,
- बड़े परिवारों और अति जनसंख्या के प्रति आलोचनात्मक विचार करे और जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण की ज़रूरत को समझे, और
- स्वस्थ यौन संबंधी मुद्दों के प्रति उचित दृष्टिकोण विकसित कर स्त्री-पुरुषों में एक दूसरे के बीच सम्मानपूर्ण संबंध विकसित करे।

शिक्षार्थी-केंद्रित उपागमों पर ज़ोर देने की ज़रूरत शिक्षा के उन उद्देश्यों के संदर्भ में है जो कक्षा स्तर विशेष के विभिन्न प्रासंगिक आयुवर्ग के छात्रों के लिए निर्धारित भौतिक, मानसिक, सामाजिक और संवेगात्मक विकास के मानदंडों के अनुरूप हों। किसी विशेष उद्देश्य के संबंध में उपलब्धि का स्तर एक कक्षा से दूसरी कक्षा तक एक चक्राकार शृंखला के रूप में होता है।

2.6 शिक्षार्थी का परिचय/वृत्त

शिक्षार्थी निष्क्रिय वस्तु नहीं हैं। वे तो सक्रिय और जिज्ञासु व्यक्ति हैं। ऐसा नहीं कि परिवेश उनको रचता हो, बल्कि वे भी परिवेश को बड़े पैमाने पर रचते हैं। ये शिक्षार्थी विद्यालय में खाली दिमाग लेकर नहीं आते बल्कि उनके मन में कुछ पूर्व विचार विद्यमान होते हैं। कक्षाई अनुभवों की व्याख्या इन्हीं पूर्व विचारों के आधार पर होती है। इस प्रकार ये पूर्व अनुभव, निष्ठाएँ और भावनाएँ व्यक्ति की समझ और घटनाओं के निर्वचन को प्रभावित करती हैं। ज्ञान प्राप्त करने की यह प्रक्रिया रचनात्मक और उत्पादक होती है और प्रत्येक छात्र का ज्ञान उसका वैयक्तिक एवं अपने आप में अनूठा होता है।

वर्षों से बच्चों या शिक्षार्थियों को एक प्राकृतिक या विशेष रूप से प्रदत्त श्रेणी में रखा जाता है। इससे इस बात का महत्त्व कम हो जाता है कि छात्र अपने समाज में घटित होने वाले सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों और ऐतिहासिक स्थितियों से अंतरंग रूप से जुड़ा हुआ है। इस प्रकार समूहों में परस्पर भिन्नताएँ और समूह के अंदर होने वाले परिवर्तन सीखने की प्रवृत्ति को प्रभावित करते हैं। इसलिए शिक्षार्थी और शिक्षण के प्रति एकतरफ़ा या खंडित दृष्टिकोण अपनाना तर्कसंगत नहीं है। दूसरी ओर शिक्षार्थी की विशेषताओं को समेकित रूप से समझना अधिक उपयुक्त और सहायक प्रतीत होता है।

पूर्व प्राथमिक स्तर के दौरान बच्चों के भौतिक और मानसिक विकास में बहुत बड़े परिवर्तन होते हैं। निर्भरता और असहायपन की स्थिति से बच्चे धीरे-धीरे मुक्त होने लगते हैं और जिज्ञासु छात्र बन जाते हैं। जैसे-जैसे उनका शारीरिक विकास सामाजिक और सांस्कृतिक संकेतों के साथ प्रतिक्रिया करने लगता है, वैसे-वैसे उनका स्नायु-तंत्र परिपक्व होता जाता है और संज्ञानात्मक अनुभवों की संवृद्धि होती जाती है। वे तेज़ी से पूरी दुनिया को अपने अनुकूल बनाने लगते हैं और धीरे-धीरे कल्पना करना और काम करने के तरीके खोजना प्रारंभ करते हैं ताकि वे भूत और वर्तमान की घटनाओं से जुड़ी स्मृतियों को मन में संगृहीत कर सकें। क्रियात्मक खेलों से अर्थात् किसी वस्तु अथवा बिना किसी वस्तु के आसानी से बार-बार अंग-संचालन करने से शिक्षार्थियों का समग्र विकास संभव हो पाता है। इस तरह वे रचनात्मक गतिविधियों का आयोजन भी करने लगते हैं जिनमें कोई चीज़ बनाने के लिए अपने हस्तकौशल द्वारा वस्तुओं को अपने ढंग से काम लायक बना लेते हैं। बच्चों की यह

अवस्था भाषा-विकास की अवस्था होती है। इसी समय वे कई प्रतीकों और अहं-केंद्रित सोच की ओर प्रवृत्त होते हैं। वे अपने और किसी दूसरे के विचारों में भेद नहीं कर पाते। इस अवस्था में बच्चे कुछ काल्पनिक खेल भी खेलने लगते हैं।

प्राथमिक स्तर में प्रवेश करने की उम्र में आकर बच्चों के शारीरिक विकास की प्रक्रिया अपेक्षाकृत धीमी होने लगती है और इस उम्र में उनकी चंचलता में भी कमी आने लगती है। कुछ छरहरे होने के साथ-साथ वे मांस-पेशियों से भी अधिक बलिष्ठ होने लगते हैं और ऐसे नए कौशलों में प्रवीणता प्राप्त करने लगते हैं जो उन्हें अपने साथियों के साथ स्पर्धा करने योग्य बनाते हैं। पर्यावरणीय और सांस्कृतिक परिवेश से पड़ने वाले प्रभाव से और अपने विकसित होते हुए क्रियात्मक कौशलों के आधार पर अब बच्चों का व्यक्तित्व अधिक समन्वित होता जाता है। उनकी सोच अधिक तर्कसम्मत होती जाती है। यहाँ आकर बच्चों के संभावित विकास का परिक्षेत्र (ज़ोन ऑफ़ प्रॉक्सीमल डेवलपमेंट) अधिक महत्त्वपूर्ण बन जाता है। यह परिक्षेत्र बच्चे के वास्तविक विकास स्तर और उच्चस्तरीय योग्यता के बीच की दूरी प्रकट करता है। यह वह भेद है जो बच्चे स्वयं स्वतंत्र रह कर क्या हासिल कर सकते हैं और उन्हें मार्गदर्शन देने पर उनकी योग्यता का स्तर क्या हो जाता है, इन दोनों के बीच के भेद को स्पष्ट करता है। जब उनके वास्तविक विकास स्तर के बजाए उनकी व्यक्तिगत क्षमता पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, छात्रों की संज्ञानात्मक क्षमताएँ बढ़ जाती हैं। इस विचार से इस दृष्टिकोण को बल मिला है कि सामाजिक प्रभाव बच्चों की संज्ञानात्मक योग्यता के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं और मार्गदर्शन या परामर्श उनके विकास को सुगम बनाते हैं। अहं-केंद्रित भाषा (जो कि व्यक्ति के स्वयं के व्यवहार को नियंत्रित करती है और अक्सर मौखिक होती है) से बच्चे आंतरिक भाषा (जिसमें स्वयं से बातचीत या स्वगत-संलाप होता है) की ओर प्रवृत्त होते हैं। इस स्थिति के दौरान बच्चे जो कहने वाले हैं, पहले उसकी रिहर्सल (आत्म-अभ्यास) कर लेते हैं। उनके विकास का नियामक उनका साथी-समूह होता है। अपने साथियों के समूहों में बच्चे दैनिक प्रतिरोधों, चिंताओं और डरों से काल्पनिक खेलों के माध्यम से निपट लेते हैं। साथियों के साथ अंतःक्रिया से उनमें सहकार या आपसी सहयोग और मिल-जुल कर रहने जैसे सामाजिक मूल्य विकसित होते हैं।

उच्च प्राथमिक स्तर पर बच्चों में अनेक शारीरिक परिवर्तन शुरू हो जाते हैं क्योंकि यह समय बचपन से किशोरावस्था में संक्रमण का है। संज्ञानात्मक स्तर पर बच्चे विशेष समस्याओं से जुड़ी समस्त काल्पनिक स्थितियों के बारे में धीरे-धीरे तार्किक ढंग से सोचने लगते हैं। वे अपनी पहचान स्थापित करने के लिए भी प्रयत्न करते हैं। पहचान स्थापित करने की प्रक्रिया के लिए आवश्यक है कि अपने दृष्टिकोण के साथ-साथ दूसरों के और समाज के दृष्टिकोण को भी समझें। इस प्रकार साथी-समूह का महत्त्व काफ़ी बढ़ जाता है। इस आयु में बच्चे मनःस्थिति में बदलाव और अंतर्विरोधी विचारों को भी लगातार महसूस करते हैं।

पहले उच्च प्राथमिक स्तर पर जिन विशेषताओं का विकास हो चुका है, माध्यमिक स्तर पर वे विशेषताएँ और सुदृढ़ होती हैं। अमूर्त अवधारणाओं के बारे में सोचना, सामाजिक पहचान स्थापित करना और साथी-समूहों को महत्त्व देना, ये सब बातें काफ़ी हद तक बढ़ जाती हैं। इसलिए इस नाज़ुक उम्र में, बच्चों के अंदर सामाजिक अंतर्क्रिया को प्रोत्साहित करना ज़रूरी है। प्रभावी शिक्षण और बौद्धिक विकास के लिए शिक्षार्थियों को अपने साथियों से सहयोग करना होगा, उनके अनुभवों को बाँटना होगा, उनकी खोजों पर चर्चा करनी होगी और मतभेदों के लिए बहस करनी होगी।

बौद्धिक विशेषताओं के अतिरिक्त अन्य विशेषताएँ भी पाठ्यचर्या-रचना के लिए महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शन करती हैं। इनको शिक्षार्थियों के पृथक-पृथक व्यक्ति के रूप में विकास और राष्ट्रीय लक्ष्यों एवं सामाजिक-सांस्कृतिक प्राथमिकताओं के संदर्भ में विकास के लिए आधार बनाया जा सकता है। शिक्षार्थी छात्रों की शारीरिक, सामाजिक और संवेगात्मक विशेषताएँ, दृष्टिकोण और रुचियों का विकास बचपन, प्रारंभिक-किशोरावस्था और मध्य-किशोरावस्था में होता है। इसलिए जब पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक, उच्च प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर पाठ्यचर्या के उद्देश्य, विषयवस्तु, कार्यनीतियाँ और प्रयोग आदि निर्धारित किए जाएँ तो इन तथ्यों पर सावधानीपूर्वक विचार करना होगा।

शारीरिक कुशलक्षेम, भावनात्मक परिपक्वता और समुचित सामाजिक उन्मुखीकरण से संबंधित आदतों, दृष्टिकोणों और विश्वासों के विकास के लिए पूर्व प्राथमिक और प्राथमिक शिक्षा के वर्ष बच्चों की ज़िंदगी में सर्वाधिक प्रभाव डालने वाले और निर्माणकारी वर्ष होते हैं। इस तथ्य को पूरी गंभीरता से पाठ्यचर्या-निर्माताओं और पाठ्यचर्या लागू करने वालों को समझना होगा ताकि छात्रों को उपयुक्त और पर्याप्त शिक्षण अनुभव दिए जा सकें।

विद्यालय में प्रवेश के समय तक बच्चे सामान्य रूप से सामूहिक जीवन में सहभागिता की मानसिक तैयारी कर चुके होते हैं। फिर भी रीति-रिवाज़ों और सामाजिक घटनाओं के प्रति विवेकपूर्ण दृष्टिकोण और महान सामाजिक आदर्शों के प्रति सुरुचि पैदा होना अभी बाकी रह जाता है। इसी प्रकार यद्यपि इस स्तर पर आकर वे सही और गलत में भेद तो करने लगते हैं फिर भी इस प्रक्रिया में जो उच्च नैतिक आदर्श निहित होते हैं, उनका विकास उनमें नहीं हो पाता। बच्चे अपने व्यवहार में दूसरों पर निर्भर न करने की इच्छा तो ज़ाहिर करते हैं मगर इस इच्छा की सुस्पष्टता तो माध्यमिक स्तर पर पहुँचकर ही समय बीतने के साथ धीरे-धीरे आती है। सामान्य रूप से माध्यमिक शिक्षा के दौरान यह उम्मीद की जाती है कि छात्र अपना जीवन-दर्शन तय कर लें ताकि उन्हें भावी वयस्कों के रूप में उपयुक्त अभिप्रेरणा और व्यवहार के निर्देश प्राप्त हों। उच्च प्राथमिक शिक्षा के अंत तक छात्र उन विरोधाभासों की आलोचना आरंभ कर देते हैं जो वे व्यक्तियों और समाज में वाणी और कर्म में देखते हैं।

अपने पैरों पर खड़े होने और उपयुक्त जीवनचर्या चुनने के प्रति चेतना सामान्य रूप से छात्र के व्यवहार से प्रकट होने लगती है।

ये विकासात्मक विशेषताएँ शिक्षण अनुभवों को धीरे-धीरे लागू करने का संकेत देती हैं। ये अनुभव विचारों, दृष्टिकोणों, नैतिक मूल्यों से जुड़े कौशलों, राष्ट्रीय आदर्शों और प्राथमिकताओं, सामाजिक-सांस्कृतिक समन्वय और विश्वबंधुत्व से संबद्ध होते हैं। उच्च प्राथमिक शिक्षा के अंत और विशेष रूप से माध्यमिक शिक्षा के दौरान जो जानकारी और मार्गदर्शन किशोरों को दिया जाता है उससे अपने लिए सही जीवनचर्या और व्यवसाय चुनना सुनिश्चित होना चाहिए। माध्यमिक शिक्षा के दौरान बड़ी संख्या में छात्रों को कार्य शिक्षा में उन्मुख करने के लिए उसे पाठ्यक्रम का अंग बनाने की ज़रूरत हो सकती है।

माध्यमिक शिक्षा के दौरान यौन इच्छा के प्रति झुकाव छात्रों के मन और शारीरिक विकास की स्वाभाविक विशेषता है। इस आयाम पर पाठ्यचर्या-निर्माताओं को सावधानीपूर्वक ध्यान देने की ज़रूरत है ताकि पाठ्यचर्या में उनके लिए समुचित प्रावधान इस संबंध में समाहित किए जा सकें और सेक्स के प्रति स्त्री-पुरुषों में स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास किया जा सके। भारतीय समाज में यौन-स्वच्छंदता के लिए कोई स्थान नहीं है और आत्म-नियंत्रण या 'संयम' एक अत्यंत उच्च जीवन मूल्य है। इन विचारों को रेखांकित करना आवश्यक है। इससे युवकों में सेक्स के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण पैदा होगा और विपरीत सेक्स के सदस्यों के प्रति सम्मान की भावना जाग्रत होगी।

विद्यालय काल में बच्चे के जीवन में जो संवेगात्मक आयाम उभरते हैं और व्यक्ति के जीवन में जो संवेगात्मक परिपक्वता आती है उसकी पाठ्यचर्या-निर्माता उपेक्षा नहीं कर सकते। धीरे-धीरे बढ़ने के साथ ही बच्चे संवेगात्मक स्थिरता और संवेगात्मक स्वतंत्रता हासिल करते हैं विशेषकर उच्च प्राथमिक शिक्षा के बाद और माध्यमिक शिक्षा के दौरान ऐसे अनेक मौके आते हैं जब छात्र को तीव्र दबावों का सामना करना पड़ता है। ये दबाव ही संवेगात्मक संकट बन सकते हैं। इस संवेगात्मक स्थिति को ध्यान में रखते हुए पाठ्यचर्या में शैक्षिक और सह-शैक्षिक विषय संबंधी समुचित क्रियाकलाप और अनुभव प्रदान करने और इस संबंध में उचित परामर्श एवं मार्गदर्शन उपलब्ध कराने के लिए आवश्यक संकेत होने चाहिए।

2.7 अध्ययन-योजना

शिक्षा के सामान्य उद्देश्यों को विभिन्न विषय-क्षेत्रों से संबद्ध विषय-वस्तु और शिक्षण अनुभवों के माध्यम से साकार किया जा सकता है। मगर यहाँ तथ्यात्मक ज्ञान से बोध-प्रक्रिया पर एवं चिंतन और ज्ञान को अंतरस्थ कर लेने पर विशेष बल होगा। व्यक्तित्व के बहुमुखी

विकास के लिए विद्यालयी पाठ्यचर्या में मूल्य शिक्षा, स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा, कला शिक्षा और कार्य शिक्षा को समुचित महत्त्व देना होगा। विभिन्न विषय क्षेत्रों में अंतर्संबंध भी स्पष्ट रूप से तय करने होंगे। इसलिए पहली से दसवीं कक्षा तक एकसमान शिक्षा पर ही ज़ोर दिया गया है।

केंद्रिक घटक और मूल्य सभी स्तरों पर पाठ्यचर्या के अविभाज्य अंग रहेंगे और उपयुक्त तरीके से उनका विभिन्न विषय क्षेत्रों में समावेश होगा। विषयवस्तु के चयन और शिक्षण-अनुभवों के संयोजन के प्रति लचीलापन पाठ्यचर्या योजना में निहित होगा।

2.7.1 शिशु शिक्षा : प्राथमिक शिक्षा की तैयारी (2 वर्ष)

शिक्षा की यह व्यवस्था बच्चों को विद्यालय के लिए तैयार करने की है और इसलिए शिशु देखभाल और शिक्षा, शिक्षा का एक प्रमुख तत्व है। समेकित बाल विकास योजना के अंतर्गत 'आँगनबाड़ियों' के ज़रिए शिशु शिक्षा, पूर्व प्राथमिक शिक्षा के रूप में उपलब्ध है। यह अन्य विभिन्न रूपों में भी उपलब्ध है, जैसे– तैयारी के विद्यालय, नर्सरी, किंडरगार्टन कक्षाएँ आदि जो सरकारी और निजी दोनों ही क्षेत्रों में एक दूसरे से थोड़े भिन्न हैं। इस तथ्य को स्वीकारना होगा कि शिक्षा की यह अत्यंत आरंभिक अवस्था बच्चे के व्यक्तित्व-निर्माण की अत्यंत नाज़ुक अवस्था है और इसका असर बच्चों के बाद की शिक्षा पर होता है। समूह-गतिविधियों, खेल-खेल में शिक्षा की तकनीकों, भाषा-खेलों, अंक-खेलों और ऐसे क्रियाकलापों, जो बच्चों को समाजीकरण और पर्यावरण चेतना की दिशा में प्रेरित करें आदि विशेष विधियों के द्वारा इस स्तर के बच्चों को शिक्षण दिया जा सकता है। इस प्रकार आनंद, समझ और सहभागिता पर आवश्यक ज़ोर देना होगा। इससे बच्चे सीखने के लिए तैयार होंगे और बच्चों पर से अस्वास्थ्यकर एवं हानिकारक बोझ कम होगा क्योंकि इस उम्र तक बच्चों की मांसपेशियों संबंधी क्षमता का पर्याप्त विकास नहीं हो पाता है। विषयों के औपचारिक शिक्षण तथा पढ़ने और लिखने पर तो पूर्ण प्रतिबंध होना चाहिए। समान सुविधा उपलब्ध कराने की दृष्टि से सभी बच्चों के लिए शिशु शिक्षा की सुलभता सुनिश्चित करनी होगी।

इस अवधि में भाषा का मौखिक उपयोग करने और स्वाभाविक अंतर्क्रियात्मक तरीके से उसे सुनने के अधिक से अधिक अवसर देने चाहिए। बच्चों को आवश्यक कौशलों का विकास करने के भी काफ़ी मौके देने चाहिए, जैसे–पहचान का कौशल, तुलना, जोड़ी बनाना, नाम बताना, क्रम बनाना, ड्राइंग करना और बिना औपचारिक संख्याओं को सिखाए गिनना आदि। बच्चों में सामाजिक चेतना उत्पन्न करने की दृष्टि से बच्चे-बच्चे के बीच अंतर्क्रिया तथा बच्चे और प्रकृति के बीच अंतर्क्रिया को प्रोत्साहित करना चाहिए। उपर्युक्त प्रणाली उन क्रियाकलापों के अतिरिक्त होगी जो बच्चों में सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने और स्वस्थ सामाजिक सहभागिता में भाग लेने की आदतें डालने में मदद करते हैं। बच्चों को प्रेरित करना होगा कि

वे पालतू-प्राणियों के साथ खेलें, सामान्य पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों, आवागमन के साधनों और कुछ खगोलीय पिंडों, जैसे—सूर्य, चंद्रमा, तारे आदि को जानें।

2.7.2 प्रारंभिक शिक्षा (8 वर्ष)

प्राथमिक स्तर (5 वर्ष)

प्राथमिक स्तर को कुछ अंतर्निहित निरंतरता के साथ दो भागों में देखना होगा। प्रथम भाग में पहली तथा दूसरी कक्षा होगी जहाँ बच्चों की औपचारिक शिक्षा की शुरुआत होगी और वे विकास के ऐसे स्तर पर होंगे जब अनौपचारिक या औपचारिकेतर शिक्षण से बड़ी सरलता से उन्हें औपचारिक शिक्षण की ओर ले जाया जाएगा। दूसरे भाग में तीसरी से पाँचवी कक्षा में आकर बच्चे वातावरण को समझने लगते हैं और व्यवस्थित ढंग से सीखने लगते हैं। इन दोनों भागों के लिए अध्ययन योजना निम्नानुसार है—

(अ) पहली और दूसरी कक्षा

(क) एक भाषा – मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा

(ख) गणित

(ग) स्वस्थ और उत्पादक जीवन की कला

(क) और (ख) के लिए जो अनुभव दिए जाएँगे उनमें बच्चों को संपूर्ण रूप से स्वाभाविक और मानव-निर्मित पर्यावरण में लाना होगा। भाषा और गणित शिक्षण बच्चों के आसपास के पर्यावरण में गुँथे हुए होंगे और उनमें पर्यावरणीय सरोकार भी समेकित होंगे।

स्वस्थ और उत्पादक जीवन के अनुभव प्रदान करने का तात्पर्य है बच्चे के व्यक्तित्व के समग्र विकास में योगदान करना। ये कार्य बच्चे को केंद्र में रखकर करना होगा। इसमें बच्चों को ऐसे क्रियाकलापों में लगा लेना होगा जो उनके विकास के स्तर के अनुरूप हों। इस स्तर पर स्वास्थ्य से संबंधित गतिविधियों का महत्त्वपूर्ण स्थान होगा ताकि बच्चे आवश्यक कौशल, दृष्टिकोण और आदतें, स्वयं को स्वस्थ रखने और अपनी उम्र के मुताबिक खेलकूद में भाग लेने की दृष्टि से अर्जित कर सकें। बच्चों को प्रारंभिक यौगिक क्रियाएँ भी सिखाई जाएँगी और उन्हें संतोष देने वाले विभिन्न अनुभवों से गुज़रने के अवसर दिए जाएँगे, जैसे—संगीत, नाटक, चित्रकला, मिट्टी के मॉडल बनाना आदि। इसके अतिरिक्त कार्य शिक्षा से जुड़ी गतिविधियों में भी बच्चों को लगाया जाएगा ताकि वे कार्य के प्रति निषेध या झिझक से मुक्त हों और कार्य करना पसंद करें। मूल्यों के निर्माण और प्रसार के लिए किस्से और कहानियाँ बहुत ही प्रभावी

भूमिका अदा करते हैं। ये बच्चों में जिज्ञासा, कल्पना और कौतूहल का भाव पैदा करते हैं और उन्हें पुष्ट करते हैं। ये समस्त अनुभव समेकित या समन्वित तरीके से प्रस्तुत करने की आवश्यकता है जिसके लिए विभिन्न कथानकों की पहचान करनी होगी और इनके लिए शिक्षक स्थानीय संसाधनों का उपयोग करेंगे और जहाँ आवश्यक होगा, समुदाय का सहयोग लेंगे।

(ब) तीसरी से पाँचवी कक्षा

(क) एक भाषा – मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा

(ख) गणित

(ग) पर्यावरण अध्ययन

(घ) स्वस्थ और उत्पादक जीवन की कला

जहाँ तक पर्यावरण अध्ययन का प्रश्न है इस स्तर पर बच्चों को ऐसे अनुभव दिए जाएँगे जो पर्यावरण में घटित होने वाली घटनाओं की चेतना और समझ उत्पन्न करने के साथ उनके सामाजिक-संवेगात्मक और सांस्कृतिक विकास में सहायक हों। कक्षा के अंदर और बाहर ऐसा अवलोकन वर्गीकरण, तुलना और निष्कर्ष निकालने आदि के कौशलों के विकास के माध्यम से करना होगा। वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए समेकित-प्रणाली सर्वाधिक उपयुक्त होगी।

स्वस्थ एवं उत्पादक जीवन की कला सिखाने के लिए बच्चों को संगीत, नाटक, चित्रकला, कठपुतली कला, स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा, खेलकूद और योग एवं उत्पादक कार्यों में उनकी सहभागिता सुनिश्चित करते हुए पहले से प्राप्त अनुभवों को और भी सुदृढ़ करना होगा। यहाँ भी समेकित प्रणाली का ही उपयोग करना होगा। स्थानीय रूप से विकसित पाठ्यचर्या और सामग्री को शामिल करते हुए स्वायत्तता और लचीलेपन को प्रोत्साहित करना होगा। बच्चों में समुचित मूल्य-व्यवहार विकसित करने के लिए समन्वित प्रयास सुनिश्चित करने होंगे।

उच्च प्राथमिक स्तर (3 वर्ष)

(क) तीन भाषाएँ (मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा, आधुनिक भारतीय भाषा और अंग्रेज़ी)

(ख) गणित

(ग) विज्ञान और प्रौद्योगिकी

(घ) सामाजिक विज्ञान

(ङ) कार्य शिक्षा

(च) कला शिक्षा (ललित कलाएँ/दृश्य और प्रदर्शन कला)

(छ) स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा (खेलकूद, योग, एन.सी.सी. और स्काउट्स और गाइड्स के प्रशिक्षण सहित)

माध्यमिक स्तर (2 वर्ष)

(क) तीन भाषाएँ (मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा, आधुनिक भारतीय भाषा और अंग्रेज़ी)

(ख) गणित

(ग) विज्ञान और प्रौद्योगिकी

(घ) सामाजिक विज्ञान

(ङ) कार्य शिक्षा

(च) कला शिक्षा (ललित कलाएँ–दृश्य और प्रदर्शन कला)

(छ) स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा (खेलकूद, योग, एन.सी.सी. और स्काउट्स एवं गाइड्स के प्रशिक्षण सहित)

2.8 विभिन्न स्तरों पर पाठ्यचर्या क्षेत्र

पाठ्यचर्या के उद्देश्यों को समुचित शिक्षण-अनुभवों के कल्पनाशील और विवेकसम्मत नियोजन से साकार करना संभव है। सुनियोजित क्रियाकलाप और अध्यापन-अध्ययन कार्यनीतियाँ इन अनुभवों के लिए सुविधा प्रदान करती हैं जो एक समग्र रूप में विकसित होनी चाहिए। किंतु सुविधा की दृष्टि से इन सबका विभिन्न विषय-क्षेत्रों में वर्गीकरण करना पड़ता है। शिक्षा के विभिन्न स्तरों की प्रकृति और शिक्षार्थी की क्षमता प्रत्येक पाठ्यचर्या-क्षेत्र के अंतर्गत पाठ्यचर्या नियोजन के उद्देश्यों, शिक्षण क्रियाकलापों और कार्यनीतियों को प्रभावित करते हैं। इस कारण पाठ्यचर्या-क्षेत्रों तथा उनकी विभिन्न स्तरों पर प्रस्तुति के लिए निम्नलिखित प्रस्ताव प्रस्तावित किए जाते हैं :

2.8.1 भाषा

प्राथमिक शिक्षा में भाषा-शिक्षण केवल सभी विषय-क्षेत्रों में सार्थक अधिगम के लिए ही एक

अहम मुद्दा नहीं है, बल्कि शिक्षार्थी के संवेगात्मक, संज्ञानात्मक और सामाजिक विकास के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। कमज़ोर भाषा-पृष्ठभूमि के साथ प्रवेश लेने वाले नए छात्र तब तक कमज़ोर शिक्षार्थी और सभी क्षेत्रों में कमज़ोर योग्यता प्रदर्शन वाले ही बने रहते हैं जब तक कि भाषा-कौशलों के लिए उनकी विशेष सहायता न की जाए। प्रारंभिक वर्षों में समुचित और पर्याप्त रूप से भाषा-कौशलों का शिक्षण न होने से छात्रों के उच्च प्राथमिक, माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर शिक्षा प्राप्त करने में कठिनाइयाँ आती हैं। भाषा की शिक्षा में कहीं अधिक शक्ति निहित है और वह एक ऐसा सबल साधन है जो छात्रों के विभिन्न स्तरों पर केंद्रित घटकों से संबंधित छात्रों के दृष्टिकोण और मूल्यों का विकास करती है। यह कार्य वह उपयुक्त कथानकों तथा शिक्षण अधिगम कार्यनीतियों के माध्यम से करती है। भाषा-शिक्षण का उद्देश्य स्वतंत्र-चिंतन, स्वतंत्र और प्रभावशाली ढंग से मत प्रकाशन, वर्तमान और भूतकाल की घटनाओं के तार्किक विश्लेषण आदि को प्रोत्साहित करना होना चाहिए। भाषा-शिक्षण द्वारा छात्रों को अपनी बात को अपने ढंग से कहने, अपनी स्वाभाविक सृजनात्मकता एवं कल्पना का पोषण करने और छात्रों द्वारा मौखिक भाषा एवं गणितीय भाषा के बीच निहित मूल अंतर को जानने के लिए प्रेरित करना ही चाहिए। ये ही वे तत्व हैं जिनकी वजह से संपूर्ण शिक्षा-प्रक्रिया में भाषा को एक महत्त्वपूर्ण केंद्रीय स्थान दिया जाना चाहिए।

इस संदर्भ में निम्नलिखित बिंदुओं पर गंभीरता से विचार करना आवश्यक है :

- सिद्धांततः शिक्षा में भाषा के केंद्रीय महत्त्व को स्वीकार लेने के साथ-साथ देश में शिक्षा के सभी स्तरों पर भाषा-विकास के प्रयास अभी जारी रखने होंगे,
- भाषा-शिक्षण में मौखिक आयाम पर आवश्यक ज़ोर देना होगा। भाषा में मौखिक परीक्षा को मूल्यांकन-प्रक्रिया का अभिन्न अंग बनाना होगा,
- पाठ्यपुस्तकों के अध्यापन तक ही सीमित न रहकर सामान्य विस्तृत वाचन पर ज़ोर देना होगा और इसके लिए अनवरत मार्गदर्शन और देखरेख (मॉनीटरिंग) की ज़रूरत होगी, और
- भाषा-शिक्षण के सभी कार्यक्रमों में शैक्षिक उद्देश्यों की दृष्टि से, कार्यस्थल और समाज में, मौखिक और लिखित भाषा-प्रयोग की योग्यता के विकास पर बल देना होगा।

2.8.2 त्रिभाषा सूत्र

'त्रिभाषा सूत्र' के निर्माण के चार दशक बाद भी उसका सही भावना से प्रभावी क्रियान्वयन अभी तक नहीं हुआ है। भारतीय युवावर्ग के सभी सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य, बाज़ार के

दबाव और व्यवहार प्रणालियों में परिवर्तनों के बावजूद त्रिभाषा सूत्र आज भी प्रासंगिक बना हुआ है। इस सूत्र के अंतर्गत :

- जिस भाषा का प्रथम भाषा के रूप में अध्ययन किया जाएगा वह मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा ही होनी चाहिए।
- द्वितीय भाषा
  1. हिंदी भाषी राज्यों के लिए कोई अन्य आधुनिक भारतीय भाषा या अंग्रेज़ी होगी, और
  2. अहिंदी भाषी राज्यों के लिए हिंदी या अंग्रेज़ी होगी।
- तृतीय भाषा
  1. हिंदी भाषी राज्यों में अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं और अंग्रेज़ी में से कोई एक वह भाषा होगी जिसका द्वितीय भाषा के रूप में अध्ययन न किया गया हो।
  2. अहिंदी भाषी राज्यों में अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं और अंग्रेज़ी में से कोई एक वह भाषा होगी जिसका द्वितीय भाषा के रूप में अध्ययन न किया गया हो।

चूँकि 'त्रिभाषा सूत्र' का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय एकता, अंतर्राज्यीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सहज संवाद और संचार था और वह आज भी है, इसलिए केंद्र सरकार और राज्य/केंद्र शासित राज्य सरकारों द्वारा इस सूत्र का पालन सुनिश्चित करना होगा। इस सूत्र को जटिल भाषाई संदर्भ में लागू करने के लिए इसमें कुछ मामूली संशोधन किए जा सकते हैं, उदाहरण के लिए उत्तर-पूर्व राज्यों को उनकी आवश्यकताओं और विवेक के अनुसार इस सूत्र की संपूर्ण भावना को समझते हुए लागू करने की स्वतंत्रता दी जा सकती है।

प्रत्येक बच्चे की मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा को पहली कक्षा से ही पढ़ाना शुरू करना होगा। जिन प्रकरणों में बच्चों की गृहभाषा, विद्यालयी भाषा या क्षेत्रीय भाषा से भिन्न है, वहाँ उपयुक्त समय पर प्राथमिक शिक्षा से ही क्षेत्रीय भाषा में बिलकुल आसानी से प्रवेश कराना होगा। जिन राज्यों में अनेक क्षेत्रीय भाषाएँ होने के कारण सरकारी या सरकारी कामकाज की भाषा से संबद्ध भाषा को राज्य भाषा या प्रथम भाषा के रूप में स्वीकार कर लिया गया है, वहाँ पहली कक्षा से वही भाषा पढ़ानी होगी। जहाँ भाषाई अल्पसंख्यक बच्चे पर्याप्त संख्या में हैं, वहाँ उनकी मातृभाषा पढ़ाने का प्रावधान किया जाएगा।

सन् 1988 में निर्मित पाठ्यचर्या-रूपरेखा के अनुसार "यदि प्राथमिक विद्यालयों में द्वितीय भाषा पढ़ाने के लिए संसाधन उपलब्ध हैं तो प्राथमिक स्तर पर उपयुक्त कक्षा/वर्ग से

द्वितीय भाषा का अध्यापन शुरू किया जा सकता है।" इस सुझाव को आज भी वैध माना जा सकता है। दूसरी ओर उन राज्यों/केंद्रशासित राज्यों या संगठनों में, जहाँ प्राथमिक स्तर पर केवल प्रथम भाषा ही पढ़ाई जाती है, वहाँ उच्च प्राथमिक स्तर के पहले साल से ही द्वितीय भाषा अनिवार्य रूप से पढ़ाना शुरू करना चाहिए। इस प्रकार शिक्षा आयोग (कोठारी कमीशन) द्वारा इस संदर्भ में दी गई सिफ़ारिशें आज भी श्रेष्ठ मार्गदर्शन के रूप में मौजूद हैं– "जिस स्तर पर हिंदी या अंग्रेज़ी द्वितीय भाषा के रूप में अनिवार्य भाषा के तौर पर लागू करके जितनी अवधि के लिए उसका अध्यापन तय किया जाता है वह स्थानीय प्रेरणा और आवश्यकता पर निर्भर करेगा और इसलिए इसे प्रत्येक राज्य के विवेक पर छोड़ देना चाहिए।" {8.33 (5)}

प्राथमिक स्तर के प्रथम दो वर्षों में बच्चों को सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना और सोचना जैसे मूल कौशलों को विकसित करने में मदद करनी होगी, उच्चारण के निर्धारित मानदंडों के अनुसार मानकीकरण की प्रक्रिया पर भी विशेष ध्यान देना होगा। इसी प्रकार सुवाच्य लेखन और सही वर्तनी (स्पेलिंग) अवबोध के साथ मौन वाचन की सही प्रक्रिया एवं आदत का विकास करना होगा और यह कार्य छात्रों में सृजनात्मक आत्म-अभिव्यक्ति के पोषण के साथ-साथ होगा।

उच्च प्राथमिक स्तर पर छात्रों की दोनों भाषाओं में क्षमताओं पर इसलिए ज़ोर देना होगा कि वे वास्तविक जीवन-कौशल को अर्जित करने योग्य बनकर भावी दैनिक जीवन में उनका इस्तेमाल कर सकें। प्रथम भाषा में साहित्य के रूपों से उनका परिचय कराना आवश्यक है। वे जो कुछ भी पढ़ते या सुनते हैं उस पर मौखिक या लिखित रूप से उन्हें प्रतिक्रिया देने लायक बनाना होगा। भाषा के व्यावहारिक पक्ष और अलंकारिक आयामों पर भी संतुलित बल देना होगा। सृजनात्मक अभिव्यक्ति और स्वयं चिंतन करने की योग्यता भाषा शिक्षण के माध्यम से प्रोत्साहित और पोषित करनी होगी जिसके लिए वाचिक/मौखिक भाषा का पाठ्यचर्या में महत्त्वपूर्ण स्थान होना चाहिए। प्रायोगिक या व्यावहारिक व्याकरण का अध्यापन भी इस स्तर पर आवश्यक है ताकि उससे भाषा की प्रकृति, संरचना और क्रियाओं के प्रति छात्रों में अंतर्दृष्टि का विकास हो।

उच्च प्राथमिक स्तर से तृतीय भाषा का अध्ययन शुरू होगा। जहाँ तक किस कक्षा/श्रेणी विशेष से तृतीय भाषा लागू की जाए इसका प्रश्न है, वह स्वयं राज्यों/केंद्रशासित राज्यों और संगठनों की इच्छा पर छोड़ देना चाहिए। तीनों भाषाओं का अध्ययन - अध्यापन माध्यमिक स्तर अर्थात् दसवीं कक्षा के अंत तक जारी रहेगा।

माध्यमिक स्तर पर (नवीं और दसवीं कक्षा) प्रथम भाषा के व्यावहारिक रूप में पूर्ण प्रवीणता

या मास्टरी हासिल करने और साहित्य की भाषा से अच्छा परिचय स्थापित कर लेने का उद्देश्य निहित होगा। छात्रों को वे जो कुछ पढ़ते या सुनते हैं, उसकी प्रतिक्रिया में मौखिक और लिखित रूप से अपने विचार अभिव्यक्त करने में परिपक्वता हासिल करनी होगी। साहित्यिक-सामग्री, जैसे– गद्य और पद्य के माध्यम से मानव मन की गहराइयों और विविधताओं की समझ और उनका रसास्वादन छात्रों में सुनिश्चित करना होगा। व्याकरण के व्यवस्थित अध्यापन पर बल देना होगा ताकि भाषा के त्वरित उपयोगों एवं भाषा-प्रयोगों को समझने में सुविधा हो। वांछित दृष्टिकोण और मूल्य सावधानीपूर्वक चयनित भाषा-सामग्री के माध्यम से विकसित करने होंगे। इस प्रकार प्रथम भाषा में व्याकरणिक शुद्धता और शैली की उपयुक्तता को रेखांकित करके उच्च संप्रेषण-कौशल को प्राप्त करना इस स्तर पर प्रथम भाषा शिक्षण का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए।

इस स्तर पर अंग्रेज़ी, हिंदी और अन्य आधुनिक भारतीय भाषाएँ, जिनका अध्ययन द्वितीय भाषा के रूप में किया जाता है, उनके प्रयोग की क्षमता का विकास करना आवश्यक है। जीवन में जब कभी भी आवश्यक हो, भाषा के मौखिक और लिखित उपयोग की क्षमता छात्रों में होनी चाहिए। जानकारी और आनंद के लिए युक्ति-युक्त गति से भाषा को पढ़ना भी भाषा शिक्षण का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। व्याकरण को अपने आप में एक सैद्धांतिक विषय के रूप में न पढ़ा कर उसे व्यावहारिक और प्रयोगात्मक दृष्टि से संदर्भ सहित इस प्रकार पढ़ाना होगा कि उसमें सिद्धांत पर कम-से-कम ज़ोर हो।

इस प्रकार प्राथमिक स्तर पर अधिक-से-अधिक मौखिक अभ्यास पर बल देना होगा, सभी कौशल, जैसे–सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना और सोचना उच्च प्राथमिक स्तर के अंत तक संतुलित रूप से अध्यापन के मुख्य उद्देश्य होने चाहिए और माध्यमिक स्तर पर आकर पढ़ने और लिखने पर कुछ ज़्यादा ध्यान देना होगा। इन सभी स्तरों पर भाषा शिक्षण के मामले में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और अंतिम दायित्व तो यह होगा कि शिक्षार्थियों को (मौखिक/लिखित) भाषा का प्रभावशाली उपयोग करना आ जाए और वे दैनिक जीवन से जुड़ी सभी स्थितियों में, जब-जब भी ज़रूरी हो, इसका प्रयोग कर सकें।

2.8.3 संस्कृत

राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था में संस्कृत भाषा का विशेष स्थान है, क्योंकि–

- संस्कृत भारतीय लोक समुदाय से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है और जीवन में लोगों के कर्मकांड, पर्व, त्योहार इसी भाषा के माध्यम से संपन्न होते हैं,
- इसमें ज्ञान और विवेक का अगाध भंडार उपलब्ध है। उसे आधुनिक ज्ञान क्षेत्र में उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ रचनाओं के द्वारा पुनर्जीवित, पुनर्निर्मित और समृद्ध करना होगा,

- इसमें अखिल भारतीय रूप से पूरे देश के लिए एक सार्वभौम या लोकव्यापी अपील है,
- हिंदी और अधिकांश अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के साथ इसका संरचनात्मक, शाब्दिक और अर्थ संबंधी गहरा संबंध है जिससे इन भाषाओं को बेहतर ढंग से सीखना आसान हो जाता है,
- अंतर्राष्ट्रीय रूप से कंप्यूटर में उपयोग के लिए संस्कृत सर्वाधिक वैज्ञानिक संरचना वाली भाषा के रूप में मान ली गई है।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर संस्कृत का अध्ययन करने के इच्छुक सभी शिक्षार्थियों को इस भाषा के समुचित ऐच्छिक पाठ्यक्रम उपलब्ध कराए जाने चाहिए। इसलिए संस्कृत भाषा के अध्ययन को प्रोत्साहित करना अत्यंत आवश्यक है। प्राथमिक या उच्च प्राथमिक स्तर के उपयुक्त स्थल पर संस्कृत को हिंदी एवं मातृभाषा के रूप में प्रयुक्त अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के साथ संयुक्त भाषा के रूप में पढ़ाया जा सकता है। पाठ्यक्रम का नियोजन इस प्रकार करना होगा कि उसमें संस्कृत का यथोचित स्थान बना रहे। माध्यमिक स्तर पर एक अतिरिक्त ऐच्छिक विषय के रूप में संस्कृत पढ़ाई जा सकती है। संस्कृत के लिए मुक्त विद्यालयी पाठ्यक्रमों की भी रचना की जा सकती है।

संस्कृत भाषा की पाठ्यचर्या बनाने और उसे कक्षा में एक पाठ्यक्रम के विषय के रूप में लागू करने के लिए एक बड़ा बदलाव यह करना होगा कि इसे भारत के लोगों के जीवन की सामान्य आवश्यकताओं से जुड़ी हुई एक जीवंत भाषा माना जाए जिसने योग, वैदिक गणित, खगोल विज्ञान और आयुर्वेद के माध्यम से सारे विश्व का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है।

2.8.4 हिंदी

भारत की सभी भाषाएँ समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं और देश के सभी नागरिकों को उनसे प्रेम और उनका सम्मान करना चाहिए। हिंदी की स्थिति इस रूप में अन्य भारतीय भाषाओं से भिन्न है, क्योंकि उसको भारतीय संविधान के अनुसार भारतीय संघ की 'राजभाषा' का दर्जा दिया गया है। जैसा कि प्रारंभ में सोचा गया था, हिंदी भाषा तीव्र गति से देश की सार्वजनीन भाषा (लिंग्वा फ्रेंका) बन रही है। इसलिए यह आवश्यक है कि हिंदी के पाठ्यक्रम ऐसे हों कि उससे पूरे भारत में परस्पर संवाद और संचार के रास्ते खुलें और उसमें उच्चस्तरीय व्यावसायिक कुशलता सुनिश्चित हो। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए नियमित विद्यालयी व्यवस्था और मुक्त विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में हिंदी में साहित्य के अलावा अधिक-से-अधिक कार्यात्मक कोर्स (पाठ्यविधियाँ) उपलब्ध कराए जाएँ।

2.8.5 विदेशी भाषाएँ

सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक और आर्थिक क्षेत्रों में तेज़ी से बढ़ती हुई अंतर्राष्ट्रीय अंतःक्रिया तथा संपर्क और सहयोग की ज़रूरत को देखते हुए विदेशी भाषाओं, जैसे—चीनी, जापानी, रूसी, फ्रेंच, जर्मन, अरबी, फ़ारसी और स्पेनिश के अध्ययन-अध्यापन की आवश्यकता अब महसूस की जाने लगी है।

इन भाषाओं को त्रिभाषा सूत्र में नहीं पिरोया जा सकता। फिर भी इन भाषाओं में से जिन भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन की माँग की जाए और उनके लिए यदि विद्यालयों में बुनियादी संसाधन उपलब्ध हैं तो अतिरिक्त ऐच्छिक विषय के रूप में माध्यमिक स्तर पर उन्हें पढ़ाने की व्यवस्था की जा सकती है।

2.8.6 गणित

विद्यालयों में गणित पढ़ाने का एक उद्देश्य यह है कि छात्र अपने आसपास के अनुभवों के परिमाणन (क्वांटिफिकेशन) के कौशल विकसित कर सकें। इसके लिए ज्यामितीय आकृतियों और संख्याओं के साथ प्रयोग करना, परिकल्पनाएँ करना और अवलोकन के माध्यम से उनकी पुष्टि करना गणित सीखने-सिखाने के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। गणित शिक्षण में इन निष्कर्षों का प्रमाणों के साथ सामान्यीकरण करने और समस्या हल करने की क्षमता का विकास निहित है। परिचित, अपरिचित और वास्तविक जीवन-स्थितियों में गणित के व्यावहारिक प्रयोग से निर्णय लेने की प्रक्रिया में सहायता मिलती है। संक्षिप्तता, युक्तियुक्त और विश्लेषणात्मक चिंतन, विवेक, सकारात्मक दृष्टिकोण और सौंदर्यबोध को विकसित करने में गणित का बहुत योगदान रहता है। शिक्षण के एक विशेष क्षेत्र के अतिरिक्त, गणित उन विषय-क्षेत्रों के विकास में भी बहुत मदद करता है जिनमें विश्लेषण, तर्क-वितर्क और विचारों की संख्या या मात्रा निश्चित करना शामिल है। गणित का अध्ययन अनुमान लगाने, जाँच और तर्क के माध्यम से प्रमाणिकता प्रकट करने और नए प्रश्न उठाने के लिए भी अवसर देता है। गणित की मूल संरचना का बोध गणित की शक्ति और क्षेत्र को बेहतर ढंग से जानने के लिए प्रवृत्त करता है। गणित की पाठ्यचर्या के माध्यम से भारतीय गणितज्ञों के योगदान को भी अन्य गणितज्ञों के योगदान के साथ समझने और सराहने की भावना विकसित की जानी चाहिए। इससे छात्रों में आत्मगौरव और आत्मविश्वास पैदा होगा।

माध्यमिक स्तर की गणित पाठ्यचर्या निश्चित करते समय यह ध्यान में रखना होगा कि अधिकांश छात्र इस स्तर के अंत तक विद्यालय छोड़ देंगे। उन्हें गणितीय कौशल और दक्षताओं का प्रयोग अपनी दैनंदिन कार्यस्थितियों में करना होगा। बहुत थोड़े छात्र ही उच्च शिक्षा में प्रवेश लेंगे, इसलिए दोनों समूहों की शिक्षण आवश्यकता के अनुरूप गणित पाठ्यचर्या में संतुलन रखना होगा।

प्राथमिक स्तर के प्रथम दो वर्षों में अर्थात् पहली और दूसरी कक्षा में बच्चों को सीधे अंक या संख्या में न सिखाकर आकार, लंबाई, भार आदि की अवधारणाओं से परिचित कराना होगा। इससे उनके कौशलों में प्रखरता आएगी और वे उनका इस्तेमाल वर्गीकरण, समूहीकरण एवं क्रमबद्ध सोच के लिए कर सकेंगे। इनसे अंकों को सीखने और जोड़ने-घटाने की दक्षता प्राप्त करने के लिए बच्चों में एक मज़बूत बुनियाद तैयार होगी। गणित की विषयवस्तु का निर्धारण बच्चों के आसपास के पर्यावरण को ध्यान में रखकर ही होगा। तीसरी से पाँचवी कक्षा में संख्याओं और खंडों या भिन्नों को अवधारणा के रूप में सिखाना होगा। चार बुनियादी क्रियाएँ—जोड़ना, घटाना, गुणा करना, भाग करना और उनसे जुड़ी संगणनात्मक क्रियाओं के लिए संख्याओं और भिन्नों पर प्रवीणता या अधिकार प्राप्त करना ज़रूरी है। लंबाई, भार, क्षमता, मुद्रा, समय, क्षेत्रफल, आकार आदि के बारे में अवधारणाएँ उनके मापने की इकाइयों के साथ विकसित करनी होंगी। बच्चों को ज्यामितीय आकृतियों और रचनाओं से भी परिचित कराना होगा जिनसे वातावरण में मौजूद पैटर्न और सममितियों (सीमेट्री) को बच्चे समझ सकें। अंकगणितीय प्रक्रियाओं का सरल प्रयोग भी इस स्तर पर पाठ्यक्रम में रखना ज़रूरी है।

उच्च प्राथमिक स्तर पर अधिकांश अध्यापन दैनिक जीवन के लिए आवश्यक गणित तक सीमित रहना चाहिए। छात्र तथ्यों, अवधारणाओं, दैनिक उपयोग के गणित के सिद्धांतों, व्यावहारिक ज्यामिति, क्षेत्रमिति (मेंसुरेशन), सांख्यिकी के वर्णनात्मक प्रारंभिक क्षेत्र और बीजगणित की बुनियादी अवधारणाओं का ज्ञान अर्जित करें और समझ विकसित करें। ज्यामितीय अवधारणाओं को प्रायोगिक ढंग से लागू करना और पुष्ट करना होगा और उसके लिए तरह-तरह के मॉडल्स एवं उपकरण काम में लाने होंगे। छात्रों को मौखिक/मानसिक गणित के लिए भी प्रोत्साहित करना चाहिए जो उनके दैनिक जीवन की समस्याओं को सही ढंग से और पूरी गति से सुलझाने में मदद करे। छात्रों को आगे चलकर सांख्यिकी आँकड़े ग्राफ़्स/चार्ट्स/डायग्राम्स के माध्यम से पढ़ना आना चाहिए और उन्हें बनाने, उनके मॉडल तैयार करने और उन्हें मापने के कौशलों को भी विकसित करना चाहिए।

प्रारंभिक स्तर पर गणित सीखने-सिखाने की प्रक्रिया इस प्रकार हो कि विद्यार्थी उसमें प्रवीणता प्राप्त कर लें। इस स्तर पर उपचारात्मक शिक्षण और समुचित मूल्यांकन गणित के अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रिया का अभिन्न अंग होना चाहिए।

माध्यमिक स्तर पर गणित के अध्ययन-अध्यापन को दो पूरक उद्देश्यों की पूर्ति करनी होगी। प्रथम तो छात्रों की क्षमता को इस प्रकार आगे बढ़ाना होगा कि वे दैनिक जीवन की समस्याओं को गणित के माध्यम से हल कर सकें। दूसरे, गणित का एक विषय के रूप में व्यवस्थित अध्ययन शुरू करके वे उसे आगे जारी रख सकें। पाठ्यचर्या में प्रासंगिक अंकगणितीय अवधारणाओं, संख्या प्रणाली, बीजगणित, ज्यामिति, त्रिज्यामिति, कोऑरडिनेट ज्यामिति, क्षेत्रमिति,

ग्राफ़्स और सांख्यिकी का समावेश होना चाहिए। प्रमाणित करने की अवधारणा का विकास आगमनात्मक तर्क बुद्धि पर ज़ोर देकर करना चाहिए। जनसंख्या, कृषि, पर्यावरण, उद्योग, भौतिकीय और जीव विज्ञान, इंजीनियरिंग, प्रतिरक्षा आदि विषयों की आँकड़ों से संबंधित समस्याओं का हल निकालने में गणित का व्यापक प्रयोग किया जाना चाहिए। छात्रों को इसमें भी कुशलता प्राप्त करनी होगी कि वे पर्यावरण-उपलब्ध-जानकारी ग्राफ़ों और चार्टों के माध्यम से प्रस्तुत कर सकें और सारी गणनाएँ सही प्रकार एवं गति के साथ कर सकें। इसके बाद छात्रों को समस्याओं का हल निकालने के लिए बीजगणितीय विधियों की योग्यता अर्जित करनी चाहिए। ऊँचाई एवं दूरी आदि की समस्याओं के हल के लिए सरल त्रिज्यामिति के ज्ञान का प्रयोग करना आना चाहिए। भारत के विशेष संदर्भ में गणित के इतिहास और गणितीय चिंतन को पाठ्यचर्या में महत्त्वपूर्ण स्थान देना होगा। यथाप्रसंग वैदिक गणित के उपयोग के द्वारा भी छात्रों के संगणकीय कौशलों में वृद्धि करनी होगी।

विद्यालयी शिक्षा की ठीक शुरूआत से अर्थात् प्राथमिक स्तर से ही गणित शिक्षण उपयुक्त क्रियाकलापों के माध्यम से किया जाए। इन क्रियाकलापों में स्थूल सामग्री, मॉडल, पैटर्न, चार्ट्स, चित्र, पोस्टर्स, खेल, पहेली और प्रयोगों का उपयोग किया जा सकता है। सहायक शिक्षण सामग्री के उपयोग पर ज़ोर देने की ज़रूरत है।

प्रयोगों द्वारा गणितीय लक्ष्यों की खोज में सहायता करने के लिए वर्तमान विज्ञान प्रयोगशालाओं में ही एक गणित कॉर्नर की स्थापना की जा सकती है। इसके लिए वर्तमान विज्ञान प्रयोगशालाओं को विज्ञान-गणित प्रयोगशाला का रूप दिया जा सकता है। यह कार्य छात्रों और शिक्षकों द्वारा समुदाय को संसाधन प्रदान करने के लिए प्रेरित करके किया जा सकता है। इस प्रयोगशाला को गणित और विज्ञान की खोज के लिए एक संयुक्त केंद्र के रूप में विकसित करना होगा। वास्तविक जीवन-स्थितियों पर आधारित स्वदेशी अनुभवों और गणितीय नवाचारों को महत्त्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए। इस प्रकार के गणित शिक्षण की मूल्यांकन-योजना में गणित को विज्ञान के बराबर वेटेज देना होगा।

शिक्षण सामग्री विकसित करते समय पाठ्यपुस्तकों में जो विषयवस्तु और भाषा प्रयुक्त हुई है उसमें केंद्रिक घटक, जैसे—स्त्री-पुरुष समानता, पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक अवरोधों की समाप्ति, छोटे परिवार का मानक आदि का यथास्थान समावेश होना चाहिए।

माध्यमिक स्तर पर मूल्यांकन का बल अवधारणाओं की समझ और व्यावहारिक उपयोग की जाँच पर होना चाहिए न कि अवधारणाओं को रट लेने पर।

2.8.7 विज्ञान और प्रौद्योगिकी

विज्ञान प्रत्येक मानव में निहित जिज्ञासा और आश्चर्य करने की क्षमता के प्रति सृजनात्मक

प्रतिक्रिया है। विद्यालयों में विज्ञान-शिक्षण छात्रों में खोज करने की भावना, सृजनात्मकता और सौंदर्यबोध के साथ वस्तुनिष्ठता को उत्कर्ष की ओर ले जाता है। उसका लक्ष्य सुपरिभाषित योग्यताओं को जानने, कार्य करने और अपने अस्तित्व के प्रति चेतना का विकास करना है। विज्ञान पर्यावरण और दैनिक जीवन से जुड़ी स्थितियों और प्रचलित आस्थाओं से जुड़े प्रश्नों, पूर्वग्रहों एवं समाज में प्रचलित क्रियाओं से जुड़ी समस्याओं के समाधान खोजने की योग्यता का पोषण करता है। विज्ञान अंतरिक्ष संबंधी मूलभूत ज्ञान तथा विश्व और उसके पर्यावरण-परिवेश से भी संबंधित है। विज्ञान को मनुष्यता की सेवा के लिए प्रौद्योगिकी कई ऐसे तरीकों और साधनों से उत्प्रेरित करती है जो मानव जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाएँ और सुधारें। इसलिए सामान्य माध्यमिक शिक्षा स्तर पर विज्ञान शिक्षण के बदले विज्ञान और प्रौद्योगिकी का शिक्षण करना होगा। वह भी इस दृष्टि से कि इन दोनों के बीच सुदृढ़ जीवंत कड़ियाँ जुड़ी हुई हैं। वैज्ञानिक अध्ययनों का मुख्य प्रयास जहाँ भौतिक संसार की खोज रहा है वहीं प्रौद्योगिकी का प्रयास इन खोजों का सही इस्तेमाल और नियंत्रण करना रहा है। विज्ञान सार्वभौम है और उसके सिद्धांत एवं नियमों को दुनिया में कहीं भी जाँचा, परखा या पुष्ट किया जा सकता है। आर्थिक, भौगोलिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों के आधार पर प्रौद्योगिकी कई आकार धारण करती है। इक्कीसवीं सदी के नागरिकों को वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी-साक्षरता की बुनियादी बातों को समझना और अर्जित करना होगा। छात्रों को उन मूलभूत सिद्धांतों को समझना होगा जो अनेक प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए विभिन्न क्षेत्रों में आजमाए जाते हैं, जैसे—कृषि, मौसम, ऊर्जा, स्वास्थ्य एवं पोषण, उद्योग, प्रतिरक्षा, सूचना-विश्लेषण और मानव-सरोकारों से जुड़े अन्य क्षेत्र। समस्या समाधान और निर्णय लेने के कौशलों को हासिल करने के अतिरिक्त यह प्रक्रिया छात्रों को विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बीच के संबंधों की खोज करने में सहायता करेगी।

विज्ञान प्रक्रियाओं से परिचालित होता है। फलस्वरूप विज्ञान शिक्षण एवं अधिगम में प्रक्रियाओं पर ध्यान केंद्रित करना आवश्यक है, उदाहरणतः अवलोकन के साथ प्रयोग, आँकड़ों का संग्रह, वर्गीकरण, विश्लेषण, परिकल्पना-निर्माण, तात्पर्य निकालना और अंततः वस्तुनिष्ठ सत्य के प्रति निष्कर्ष देना। इस प्रकार जो प्रक्रियात्मक कौशल अर्जित किए जाएँगे वे उन दृष्टिकोणों और मूल्यों का विकास करेंगे जो वैज्ञानिक मानसिकता पैदा करते हैं। विज्ञान परिचित पर्यावरण में सीखा जा सकता है न कि प्रतिकूल और कृत्रिम स्थितियों में।

माध्यमिक स्तर तक सामान्य शिक्षा में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अध्यापन का मुख्य उद्देश्य छात्रों को वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी-साक्षरता के विभिन्न आयामों से परिचित कराना है। इसमें शामिल हैं : विज्ञान की प्रकृति को समझना, वैज्ञानिक अवधारणाओं और उनके प्रौद्योगिकी प्रयोगों या व्यवहारों को सही ढंग से लागू करने की योग्यता अर्जित करना, विज्ञान और प्रौद्योगिकी में अंतर्निहित मूल्यों को समझने की क्षमता विकसित करना, विज्ञान,

प्रौद्योगिकी और समाज के संयुक्त प्रयासों को समझना और उन पर विचार करने की इच्छा पैदा होना, अंतरिक्ष के संबंध में समृद्ध संतोषप्रद दृष्टिकोण का निर्माण और आजीवन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की शिक्षा की निरंतरता बनाए रखना और कुछ उपयोगी कौशलों का विकास करना, जो कि दैनिक जीवन की स्थितियों के लिए आवश्यक हैं। प्रयोगशालाओं के अंदर और बाहर उपलब्ध सहयोग के अतिरिक्त यह ज़रूरी होगा कि सूचना प्रौद्योगिकी के उपकरणों का उपयोग किया जाए, जैसे—कंप्यूटर और मल्टीमीडिया पैकेज।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी शिक्षण में कुछ ऐसे मूल्य होने चाहिए जो सभी छात्रों को दिए जा सकें। ग्रामोन्मुखी एवं आदिवासी-जीवनोन्मुखी टैक्नोलॉजी को विशेष रूप से शैक्षिक पैकज का प्रमुख भाग बनाना होगा और उसकी संबद्धता सुनिश्चित करनी होगी। विज्ञान को चाहिए कि वह आवश्यकतानुसार पारंपरिक विषय-सीमाओं से परे हटकर अपने आप को नवीन मुद्दों के लिए खोले, जैसे—स्त्री-पुरुष-समानता, संस्कृति, भाषा, निर्धनता, विकलांगता, भावी रोज़गार, पर्यावरण और सीमित परिवार के मानदंड। अतीत और वर्तमान दोनों में ही विज्ञान और प्रौद्योगिकी की जो परंपरा रही है उससे और भारतीय वैज्ञानिकों के योगदान से बच्चों को परिचित कराना आवश्यक है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के माध्यम से भारत ने विभिन्न क्षेत्रों में जो उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं उनको जानकर छात्रों में आत्मविश्वास का पोषण होगा। ये सभी मुद्दे विज्ञान-पाठ्यचर्या के अभिन्न अंग होंगे।

प्राथमिक स्तर

विज्ञान प्राथमिक स्तर पर अधिगम का एक अभिन्न अंग है। प्राथमिक शिक्षा के प्रथम दो वर्षों के दौरान अपने आसपास के पर्यावरण से जुड़ी यथार्थ मूर्त-स्थितियों के ज़रिए विज्ञान-शिक्षण करना ज़रूरी है। इसमें मुख्य रूप से छात्रों की ज्ञानेंद्रियों को सक्रिय बनाकर उन्हें अपने परिवेश और पर्यावरण से खोज करने और अवलोकन एवं नई तलाश करने के लिए प्रेरित करना होगा। इससे अधिकांश अनुभवों को तो छात्र स्वयं ही समृद्ध कर लेंगे और कुछ में समय-समय पर शिक्षक अपनी ओर से जोड़ कर सहयोग करेंगे। प्राथमिक शिक्षा के शेष तीन वर्षों में जब पर्यावरण-शिक्षण शुरू किया जाए तो धीरे-धीरे अनुभवों और क्रियाकलापों की भी रचना करनी होगी, लेकिन ध्यान तो केंद्रित करना होगा वस्तुओं, घटनाओं, प्राकृतिक-स्थितियों और शिक्षार्थी के पर्यावरण पर ही। बच्चे निरंतर पर्यावरण में घटने वाली घटनाओं का अवलोकन, उनकी तलाश और उन्हें पहचानना सीखेंगे। यह उनमें जिज्ञासा पैदा करेगी और छात्रों के दिमाग में अनेक प्रश्न पैदा करेगी। शिक्षक इस तत्व को शिक्षण-प्रक्रिया में प्रमुख साधन मानेंगे और बच्चों को जहाँ भी संभव हो, आगे इस बात के लिए प्रोत्साहित करेंगे कि वे सूचनाएँ एकत्र कर यथासंभव उनके वर्गीकरण का प्रयत्न करें। इस स्तर पर स्वतंत्र रूप से और समूहों में प्रश्नों के उत्तर खोजने की प्रक्रिया शुरू की जा सकती है। यहीं अनुमान और मापन के कौशल भी विकसित किए जा सकते हैं।

उच्च प्राथमिक स्तर

इस स्तर पर बच्चे विज्ञान, प्रौद्योगिकी और मानवीय उद्यम के बीच के संबंधों को पहचानने लगते हैं। इस प्रक्रिया को मज़बूत बनाते हुए इसे ठोस रूप देना होगा। छात्र सरल वैज्ञानिक क्रियाकलापों में निहित प्रक्रियाओं को जानने के लिए बेहतर ढंग से तैयार रहते हैं और समस्या-समाधान एवं निर्णय करने में उनकी उपयोगिता का अंदाज भी लगा लेते हैं। वे कार्य-कारण संबंध और संरचना कार्य-संबंधों को भी समझने लगते हैं। पर्यावरण को शिक्षण के मुख्य स्रोत के रूप में निरंतर बने रहना चाहिए और छात्रों को अपने आसपास घटित होने वाले परिवर्तनों को समझना चाहिए। यहाँ बच्चे इस जीवंत विश्व, प्राकृतिक संतुलन और वायु, जल एवं ऊर्जा के संबंध में भी समझ हासिल करेंगे। प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण पर भी आवश्यक बल देना होगा। इस स्तर पर पदार्थ, सामग्री और ऊर्जा से संबंधित मूल सिद्धांतों की प्रारंभिक समझ का शिक्षण भी शुरू किया जा सकता है। इस स्तर पर जीवन-प्रक्रियाओं से परिचय, स्वास्थ्य, पोषण और बीमारियाँ, मिट्टी और कृषि क्रियाएँ और उनका अनुकूलन करने की प्रक्रिया भी विज्ञान पाठ्यचर्या का अंग होगा।

छात्रों को वैज्ञानिक जानकारियों से लाद देने के बजाए ऐसे प्रयास करने होंगे कि छात्र उन *मुख्य अवधारणाओं* को सीखें जो पूरे विज्ञान-विषयों में कहीं-न-कहीं पाई जाती हैं। इससे उनमें जिज्ञासा पैदा होगी और उनकी चेतना और समझ का विस्तार होगा। सामान्य सरल उपकरण स्वयं ही तैयार करने, स्थानीय संसाधनों के उपयोग से प्रयोगों की रचना करने और उनके द्वारा वैज्ञानिक-अवधारणाओं को समझने और कुछ प्राकृतिक घटनाओं एवं स्थितियों की व्याख्या करने के लिए छात्रों को प्रेरित करना होगा। छात्रों में कुछ स्थानीय और कुछ सार्वभौम सरोकारों के प्रति चेतना उत्पन्न करनी होगी और विशेष रूप से उन्हें इन क्षेत्रों में सतत जागरूक बनाए रखना होगा, जैसे– पेयजल, पर्यावरण, स्वास्थ्य, पोषण, परिवार-कल्याण आदि।

माध्यमिक स्तर

इस स्तर के पश्चात अधिकांश छात्र कार्य-जगत में प्रवेश कर जाते हैं। इस स्तर पर जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण और कौशल बनते हैं वे आगे के विकास की बुनियाद बनते हैं। छात्रों को विज्ञान की प्रकृति और संरचना एवं विज्ञान-प्रौद्योगिकी के विकास में इसके योगदान से परिचित कराना ज़रूरी है। इस स्तर पर विज्ञान-शिक्षण को प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण एवं परिवेश के इर्द-गिर्द रखना चाहिए। पदार्थ और उनकी विशेषताओं, ऊर्जा, विभिन्न भौतिक प्रक्रियाओं और विज्ञान के सिद्धांतों के प्रौद्योगिकी प्रयोग के बीच के संबंध की समझ और अवधारणाओं को शिक्षण के केंद्र में रखना होगा। प्राणी विज्ञान में शरीर रचना, उसके संयोजन और जीवन-प्रक्रियाओं का अध्यापन किया जाएगा। विज्ञान और प्रौद्योगिकी

की संयुक्त प्रणाली का व्यावहारिक उपयोग स्वास्थ्य और पोषण, उद्योग, कृषि, पशुपालन एवं अन्य संबंधित क्षेत्रों में विज्ञान की कड़ियाँ सामाजिक आकांक्षाओं से जोड़ेगा। इस स्तर पर विज्ञान के शिक्षण और अधिगम में विज्ञान, प्रौद्योगिकी, समाज और पर्यावरण को समन्वित किया जाएगा।

जो भी व्यावहारिक क्रियाकलाप चुने जाएँ वे कौशलों और मूल्यों के अर्जन के द्वारा भावी जीवन में प्रासंगिक होने चाहिए। छात्रों को व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों ही प्रकार से काम करने के लिए प्रोत्साहित करना आवश्यक है। आलोचनात्मक, सृजनात्मक और उत्पादक चिंतन का विकास करना होगा। स्वयं के साधनों से कुछ करने की भावना को प्रोत्साहित तो अवश्य करना चाहिए लेकिन उसका नमूना खोज के एक तत्व के रूप में देना होगा। प्रयोगों के लिए बड़े पैमाने पर लचीलेपन को अपनाना होगा। छात्रों को उपयुक्त प्रयोगों और क्रियाकलापों में मदद करने के लिए विद्यालय के अंदर और बाहर ऐसे उपाय बताने होंगे जिनसे उन्हें अपने नज़दीकी पर्यावरण से जुड़े कामों में शामिल किया जा सके, जैसे—कृषिफार्म, कारखाने, उद्योग और समुदाय संबंधी कार्य।

2.8.8 सामाजिक विज्ञान

सामाजिक विज्ञान का घटक माध्यमिक स्तर तक के समस्त विषयों की सामान्य शिक्षा का एक अभिन्न अंग है। यह शिक्षार्थियों में मानवीय पर्यावरण को पूर्णरूप से समझने में सहायता करता है और एक विराट आयाम विकसित कर प्रत्यक्ष अनुभव आधारित, युक्तियुक्त और मानवीय दृष्टिकोण पैदा करता है। छात्रों को यह विषय आवश्यक गुणों/कौशलों के साथ पूर्ण सूचना संपन्न और ज़िम्मेदार नागरिक बनने में मदद करता है जिससे वे विकास प्रक्रिया और राष्ट्र निर्माण में भागीदारी करके अपना प्रभावी योगदान कर सकें।

विद्यालयी पाठ्यचर्या के लिए सामाजिक विज्ञान की विषयवस्तु का चयन मुख्य रूप से भूगोल, इतिहास, नागरिकशास्त्र और अर्थशास्त्र जैसे विषयों से किया जाता है। उसमें समाजशास्त्र के भी कुछ तत्व शामिल किए जाते हैं। ये सब मिलकर मानव-समाज के विभिन्न आयामों के अध्ययन के लिए छात्र को प्रवृत्त करते हैं, जैसे– स्थान और समय और उनका एक दूसरे से संबंध के आधार पर अध्ययन। इस विषय का अध्ययन छात्रों में समकालीन समाज की बेहतर समझ विकसित करने में सहायक होता है। सामाजिक विज्ञान की शिक्षा छात्र को समाज के प्रभावी और सहयोगी सदस्य बनने के लिए आवश्यक ज्ञान, कौशल और आत्म-विकास के लिए सही दृष्टिकोण प्रदान करती है।

सामाजिक विज्ञान की शिक्षा को सार्थक, प्रासंगिक और प्रभावी बनाने के लिए समकालीन संसार के सरोकारों और मुद्दों को ध्यान में रखना होगा। इस उद्देश्य से इतिहास की

विषय-सामग्री से अनावश्यक तत्व हटाने पड़ेंगे। अतीत के विकास का ऐतिहासिक अध्ययन करने से वर्तमान को समझा जा सकता है। इसलिए वर्तमान की चुनौतियों को उपयुक्त ढंग से समझना आवश्यक है। एक ओर भूमंडलीकरण और उदारीकरण और दूसरी ओर स्थानीयता का भावी समाज पर बहुत असर पड़ेगा। ये तत्व अपने साथ अनेक सामाजिक और आर्थिक चुनौतियाँ लेकर आए हैं। एक सुदृढ़ और सुसंबद्ध भारतीय समाज की रचना के लिए इन चुनौतियों का प्रभावशाली ढंग से सामना करना होगा। इसके लिए संवेगात्मक रूप से प्रतिभा संपन्न ऐसे छात्रों की ज़रूरत होगी जो चुनौतियों का सामना करते हुए नवीन और अपरिचित स्थितियों के साथ संयोजन कर सकें।

लोकतांत्रिक पद्धति में अधिकारों के विकेंद्रीकरण और स्थानीय शासन, जैसे– पंचायती राज-व्यवस्था ने बहुत महत्त्व हासिल कर लिया है। इसका उद्देश्य लोगों की सहभागिता के स्तर को ऊँचा उठाना है। विकास के संसाधनों का अधिकतम उपयोग करने के लिए स्थानीय शासन को अधिकाधिक जवाबदेह और कुशल बनाना होगा। इसलिए छात्रों को विकास की प्रक्रिया और उसकी ज़रूरतों एवं निहितार्थों को समझने के लिए अच्छी तरह से तैयार करना होगा। इसके साथ ही उन्हें स्थानीय, राज्य स्तर और राष्ट्रीय स्तर पर शासन करने की प्रणाली तथा उसमें अपना स्थान समझना होगा। इसके लिए नागरिकशास्त्र के पाठ्यक्रम को परिवर्द्धित करने की आवश्यकता होगी। बौद्धिक जानकारी के साथ-साथ सामाजिक कौशल, जैसे– आलोचनात्मक चिंतन, तालिकाओं, आरेखों और मानचित्रों को पढ़ना और उनकी व्याख्या करना, दूसरों के साथ सहयोग करना और उनकी समस्याओं के प्रति संवेदनशील होना और नेतृत्व के लिए अकादमिक के साथ-साथ सामाजिक कौशलों का व्यवस्थित रूप से विकास भी करना होगा। सामाजिक विज्ञान की पाठ्यचर्या की सुविचारित रचना छात्रों के लिए 'वैश्विक ढंग से सोचने और स्थानीय रूप से कार्य करने' दोनों में सहायक होगी।

आज के विश्व में जहाँ ज्ञान अनवरत रूप से बढ़ रहा है विषयवस्तु के चयन और संयोजन का बहुत महत्त्व है। सामाजिक विज्ञान का पाठ्यक्रम समग्रतायुक्त तो हो किंतु अनावश्यक जानकारियों से लदा हुआ नहीं होना चाहिए। विचारों की अंतर्संबद्धता और उनकी समग्रता एवं अवबोध को भी ध्यान में रखना चाहिए। मात्र तथ्यों के एकत्रीकरण की अपेक्षा अधिगम प्रक्रिया और चिंतन के महत्त्व को भी रेखांकित करना उचित होगा। छात्रों को सुनियोजित क्रियाकलापों के माध्यम से सार्थक अधिगम अनुभव देना ज़रूरी है। इससे उन्हें मूल दक्षताएँ और कौशल अर्जित करने में सहायता मिलेगी। इन सबको दृष्टिगत रखते हुए मूल कथानक तथा मुद्दे पाठ्यवस्तु क्षेत्रों के चयन और संयोजन के लिए मज़बूत आधार प्रदान करेंगे। जहाँ शैक्षिक विषय/क्षेत्रों की संख्या कम हो, वहीं छात्रों के अनुभवों को अधिकतम स्तर तक ले

जाने के लिए विषयों की गहराई पर अधिक ध्यान देना होगा। इन कथानकों को भूगोल, इतिहास, नागरिकशास्त्र, अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र से ग्रहण कर उनका संतुलित और उपयुक्त श्रेणीवार संयोजन सरल से जटिल और निकटस्थ से दूरस्थ के सिद्धांत के आधार पर किया जाए। इनमें कुछ मुद्दे और कथानक इस प्रकार हो सकते हैं :

भारतीय सभ्यता और उसकी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का विश्व सभ्यता के साथ अध्ययन करके उनके अंतर्संबंधों को इतिहास के आधार पर अध्ययन का मुख्य क्षेत्र बनाया जा सकता है। इस दृष्टि से देश में घटित विभिन्न सांस्कृतिक आंदोलनों और क्रांतियों तथा देश की संस्कृति के अन्य देशों तक प्रसार संबंधी विषयवस्तु का समावेश करना होगा। खाद्यान्न उपलब्धता की सुनिश्चितता, जनसंख्या वृद्धि, निर्धनता, जल का अभाव, जलवायुगत परिवर्तन और सांस्कृतिक बहुलता का संरक्षण इक्कीसवीं सदी के कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण मुद्दे हैं जो सामाजिक विज्ञान पाठ्यचर्या के लिए प्रासंगिक हैं। इसलिए 'पर्यावरण, संसाधन, स्वपोषित विकास' और 'मानव पर्यावरण अंतर्क्रिया' की विषयवस्तु भूगोल, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र एवं अन्य संबंधित क्षेत्रों से ग्रहण की जाएगी। भारत के संबंध में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओं एवं प्रशासन प्रणाली और उनके कार्यों– विशेषतः विषय-सामग्री नागरिकशास्त्र और अर्थशास्त्र से ली जाएगी। मानव-पर्यावरणों से जुड़े आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक पहलुओं पर ज़ोर देना होगा। जहाँ समकालीन विश्व के संदर्भ में विशेष रूप से ऐसा करना होगा, वहीं भारत को इसके केंद्र में रखना होगा। 'यूरोप–संकेंद्रित विश्व' जैसे विचार में परिवर्तन होना अनिवार्य है। इससे यूरोपियनों द्वारा भारत और अमेरिका की खोज जैसे विषय भारतीय छात्रों के लिए महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाएँगे।

सामाजिक विज्ञान के विषय पहले इंगित लगभग सभी केंद्रिक घटकों का एकीकरण करने की दृष्टि से सर्वाधिक उपयुक्त हैं। उदाहरण के लिए भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, संवैधानिक दायित्व, राष्ट्रीय पहचान विकसित करने वाली विषय-सामग्री, स्त्री-पुरुष समानता, सामाजिक अवरोधों की समाप्ति, मौलिक कर्त्तव्य एवं मानव-अधिकार, जिनमें बच्चों के अधिकार भी उपयुक्त रूप से समाहित हों, ये सभी तत्व सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम में रखे जाने योग्य हैं। विषय-सामग्री और शिक्षण-पद्धति में विभिन्न स्तरों पर इन महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों का समावेश सुनिश्चित करना होगा। इस प्रकार सामाजिक विज्ञान के अध्यापन द्वारा अनेक मूल्यों का विकास किया जा सकता है।

सामाजिक विज्ञान के अध्यापन से मानवीय और राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्यों के विकास को प्रोत्साहन मिलना चाहिए और अपने देश पर तथा भारतीय होने पर गर्व की भावना जाग्रत होनी चाहिए। इसकी ज़रूरत राष्ट्रीय पहचान को सुदृढ़ करने और अपनी सांस्कृतिक विरासत को समझने के लिए आवश्यक है। इससे सांप्रदायिक सद्भाव और सामाजिक समन्वय को प्रोत्साहन

मिलेगा। इसका अध्यापन वस्तुनिष्ठ ढंग से होना चाहिए जो जड़ एवं रूढ़िबद्ध छवियों, पूर्वग्रहों एवं पक्षपातों से मुक्त हो।

सामाजिक विज्ञान के अध्ययन-अध्यापन का मुख्य आधार क्षेत्रकार्य, प्रोजेक्ट कार्य और समूह गतिविधियाँ होनी चाहिए। स्थानीय समुदाय से सीधे जुड़ी परियोजनाओं को प्रेरित करना होगा। आर्थिक और राजनीतिक-विधिक साक्षरता, शिकायत दूर करने की प्रणाली और उपभोक्ता शिक्षा को भी प्रोत्साहित करना चाहिए।

प्राथमिक स्तर

पहली और दूसरी कक्षा में बच्चों को संपूर्ण पर्यावरण से परिचित कराना होगा। प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण में कोई स्पष्ट भेद करने की ज़रूरत नहीं है। बच्चों के निकटस्थ पर्यावरण को ही विषयवस्तु माना जाए। उसके लिए अध्ययन का कोई पृथक परिक्षेत्र नहीं होगा। उसकी विषयवस्तु को भाषा, गणित एवं अन्य क्रियाकलापों के साथ समन्वित करना होगा, जैसे—खेलकूद, स्वास्थ्य संबंधी क्रियाएँ और चित्रकला। अवलोकन, वर्णन और आत्म-अभिव्यक्ति के कौशलों को प्रोत्साहित करना होगा।

तीसरी से पाँचवीं कक्षा में प्राकृतिक और सामाजिक तत्व पृथक अध्ययन-क्षेत्र के रूप में शुरू किए जाएँ जो पर्यावरण अध्ययन के नाम से जाने जाएँगे। बच्चों के घर, विद्यालय और पड़ोस, जैसे— आसपास के पर्यावरण एवं परिवेश से प्रारंभ करके धीरे-धीरे राज्य और देश से उनका परिचय कराया जाए। इन अल्पवय के शिक्षार्थियों के लिए भोजन, वस्त्र, घर, मेले और त्योहार और आसपास घटित होने वाले परिवर्तन एवं दैनिक जीवन से जुड़ी कहानियाँ और विवरण सामाजिक विज्ञान के पाठ्यक्रम को इस स्तर पर प्रासंगिक और आनंददायी बना देंगे। इस स्तर पर हमारी पारंपरिक वेशभूषाएँ, लोक-संगीत, लोकनृत्य, स्थानीय समुदाय और क्षेत्र में आयोजित होने वाले मेलों और त्योहारों आदि के प्रति गर्व और आदर की भावना उत्पन्न करने के प्रयास किए जाने चाहिए। ऐसा सामाजिक समरसता के लिए योगदान देने वाले विभिन्न तत्वों के संबंध में समझ विकसित करने की दृष्टि से किया जाना उचित होगा। बच्चों को इस बात से भी परिचित कराया जाना चाहिए कि प्राचीन काल में लोग किस प्रकार रहते थे और अब देश के विभिन्न भागों में किस प्रकार रहते हैं। समुदाय और देश के कुछ सुप्रसिद्ध व्यक्तित्वों, जिनका लोक-जीवन के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, को भी पाठ्यचर्या में शामिल करना होगा।

विद्यालयों को इस स्तर पर स्थानीय रूप से निर्मित पाठ्यचर्या के लिए और पर्यावरण अध्ययन की दृष्टि से स्थानीय संसाधनों के उपयोग के लिए पूर्ण स्वायत्तता दी जानी चाहिए।

उच्च प्राथमिक स्तर

प्रारंभिक वर्षों में देश के संबंध में कुछ जानकारी हो जाने के बाद छात्रों को अधिक विस्तार से भारत और विश्व के अध्ययन की ओर क्रमशः उन्मुख किया जा सकता है। पर्यावरण के घटक और उनकी अंतर्क्रिया का अध्ययन प्रक्रिया और प्रारूपों के अनुसार किया जाएगा। शिक्षार्थियों को खोज एवं अध्ययन स्वेच्छा से करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। उदाहरण के लिए, छात्रों को भौतिक और मनुष्य-निर्मित लक्षणों, प्रतिभासों और घटनाओं आदि के संबंध में प्रश्न उठाने के लिए प्रेरित किया जाएगा। छात्रों को देश में वर्षा वितरण और ग्रामीण एवं शहरी भूमि के उपयोग जैसे सरल प्रारूपों की पहचान करने के काबिल बनाया जाएगा। सामाजिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक विकास को यथासंभव भारत के अतीत की चुनी हुई घटनाओं और उपाख्यानों के माध्यम से छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करना होगा। भारत की सांस्कृतिक विरासत को समझने और उसकी सराहना करने के लिए छात्रों की सहायता करनी होगी। दुनिया की कुछ पुरातन सभ्यताओं और उनके पारस्परिक अंतर्संबंधों को, विश्व सभ्यता के विकास में भारत के योगदान तथा अन्य सभ्यताओं के योगदान के साथ-साथ विश्व के प्रमुख ऐतिहासिक घटनाक्रमों को भी समझना और इनकी सराहना करने की भावना विकसित करना सिखाना होगा। समकालीन समाज जिसमें भारत की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संस्थाएँ और उनके कार्य शामिल हैं, प्रशासनिक प्रणाली, शहरीकरण और आर्थिक-सामाजिक विकास एवं अन्य कुछ क्षेत्रों को पाठ्यचर्या में सम्मिलित करना होगा। छात्रों के विकास और उनकी दैनिक जीवन में प्रभावी भूमिका के लिए शैक्षणिक कौशलों के अतिरिक्त सामाजिक कौशल और नागरिक दक्षताएँ विकसित करनी होंगी।

माध्यमिक स्तर

'समकालीन भारत' अध्ययन का एक केंद्रीय विषय है। इसमें मानव-पर्यावरण-अंतर्क्रिया और पर्यावरण से जुड़े मुद्दे, उनके संसाधन और उनके विकास की प्रक्रियाएँ और प्रारूप निहित हैं। निकट अतीत में जो प्रमुख घटनाएँ घटी हैं, उनमें भारत का स्वतंत्रता संघर्ष और विभिन्न वर्गों, क्षेत्रों एवं समूहों, विशेष रूप से महिलाओं और कमज़ोर वर्गों की भूमिका और योगदान शामिल हैं। उनका स्वतंत्र भारत के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास एवं चुनौतियों पर असर पड़ा है। ये सब विषय पाठ्यचर्या के अंतर्गत छात्रों को पढ़ाने के लिए शामिल किए जाएँगे। भारत के सामने मुद्दे और चुनौतियाँ, जैसे—निर्धनता, निरक्षरता, भ्रष्टाचार, असामाजिक गतिविधियाँ, मौलिक अधिकार, मौलिक कर्त्तव्य और आर्थिक विकास भी यथास्थान पाठ्यचर्या में होंगे। इसके अतिरिक्त विश्व में भारत की भूमिका, विशेष रूप से विश्व शांति, अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और उपनिवेशवाद की समाप्ति जैसे क्षेत्रों को पाठ्यचर्या में शामिल किया जाएगा। प्रवासी भारतीयों के योगदान और उपलब्धियों को भी उचित स्थान दिया जाएगा। माध्यमिक

स्तर के अंत में विद्यार्थियों में इतनी योग्यता आ जानी चाहिए कि वे अपने ज्ञान, समझ और कौशलों का उपयोग स्थानीय, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर विस्तृत अध्ययन के माध्यम से कर सकें। इस स्तर तक आते-आते प्राकृतिक और मानवीय प्रक्रियाओं के बीच की अंतर्क्रियाओं का वर्णन करने और प्रारूपों को पहचानने की योग्यता का उनमें विकास करना होगा। उन्हें तथ्यों के स्रोतों की भी तलाश करने योग्य बनाना होगा और उनमें समस्याओं और मुद्दों के विवेकसम्मत एवं वैज्ञानिक विश्लेषण करने की क्षमता पैदा करनी होगी। यदि छात्र कुछ प्रकरण-अध्ययन या प्रकल्प कार्य हाथ में लेते हैं तो यह उपयोगी तो होगा ही, यह लोगों की पर्यावरण के साथ अंतर्क्रियाओं से उत्पन्न मुद्दों का अनुसंधान करने में उनके लिए सहायक भी होगा।

2.8.9 स्वस्थ और उत्पादक जीवन की कला : प्राथमिक स्तर

पाठ्यचर्या में अधिगम के एक ऐसे अंतर्विषयात्मक क्षेत्र को लाने की महती आवश्यकता है जिसमें स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा, कला शिक्षा और कार्यानुभव आदि समाहित हों। पिछले पाठ्यचर्या-दस्तावेज़ में इन तत्वों को स्पष्ट स्थान प्रदान किए जाने के बावजूद इन पर वास्तव में बहुत ही कम ध्यान दिया गया है। शिक्षक और कार्यान्वयन एजेंसियाँ—जो बच्चों के व्यक्तित्व के समग्र विकास में बड़े पैमाने पर योगदान देती रही हैं, इस संबंध में तार्किक, अवधारणात्मक और अन्य कई कठिनाइयों को महसूस किया है। हमारी व्यवस्था ने भी बच्चों की विकास संबंधी आवश्यकताओं को लेकर कठिनाइयाँ महसूस की हैं। इन क्षेत्रों के आधे-अधूरे मन से क्रियान्वयन के पीछे शिक्षकों के पास उपयुक्त प्रेरणा और मूल्यांकन प्रक्रियाओं का अभाव एक और प्रमुख तत्व रहा है। अन्य अड़चनें इन्हें खंडित रूप से लागू करने के कारण प्रतीत होती हैं। इसलिए 'स्वस्थ और उत्पादक जीवन की कला' के शीर्षक से प्रस्तावित विषय की सिफ़ारिश प्राथमिक कक्षाओं के लिए की जा रही है जो आगे चल कर उच्च प्राथमिक स्तर के लिए भी लागू होगी।

स्वस्थ और उत्पादक जीवन की कला का मुख्य उद्देश्य छात्रों में सौंदर्यबोध और स्वास्थ्यपूर्ण जीवन के कौशलों का विकास करना है। यह श्रम के प्रति आदरभाव, सकारात्मक सामाजिक दृष्टिकोण और नैतिक मूल्यों के पोषण के अवसर देता है जिससे अन्य लोगों के विचारों को बच्चे नम्रता और ईमानदारीपूर्वक और मनसा, वाचा, कर्मणा ग्रहण करते हैं। यह बच्चों को सामाजिक प्राणियों के रूप में विकसित होने के अवसर प्रदान करता है और समाज एवं राष्ट्र के लिए उन्हें समर्पित और सहयोगी नागरिक बनाता है। इसी स्तर पर मनुष्य मात्र के प्रति प्रेम और ज़रूरतमंदों की सहायता जैसे गुण अंकुरित होते हैं और इन गुणों का चरम उत्कर्ष निःस्वार्थ सेवा के रूप में होता है।

पहली और दूसरी कक्षा

आड़े-टेढ़े ढंग से लकीरें खींचना, शरीर के अंगों के संचालन को देख कर खुश होना, रंगों, आकृतियों और खिलौनों को देख कर आनंदित होना आदि पूर्वार्जित अनुभव इस स्तर पर आकर पुष्ट होंगे। बच्चों के खेलने की स्वाभाविक प्रवृत्ति को भी संतुष्ट होना चाहिए। ऐसी क्रियाएँ आयोजित की जा सकती हैं जिनमें बच्चे अपनी पसंद के अनुसार खेल, संगीत, कुछ आकारों में चित्रकला, खेल-खेल में मिट्टी के नमूने बनाना और समूह-क्रियाओं में हलके शारीरिक व्यायाम, समूहगान, अभिनय कला, नृत्य और नकल करने वाली क्रियाएँ सम्मिलित होंगी।

शिक्षकों को बच्चों के लिए क्रियाएँ आयोजित करते समय स्थानीय परिवेश, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और उपलब्ध साधनों को ध्यान में रखना होगा। शिक्षकों को शिक्षार्थियों के लिए आयोजित की जाने वाली प्रत्येक उपयोगी क्रिया के उद्देश्यों को दृष्टिगत करके उन्हें स्वतंत्र खेल और स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करने होंगे। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि प्रत्येक बच्चा इन क्रियाओं में सहभागी बने और कुछ अच्छी आदतों का व्यावहारिक रूप में विकास करे। यह उम्र बच्चों में कहानी-कथन और अभिनय के द्वारा उनकी परिपक्वता और समझ के अनुरूप मूल्य विकसित करने के योग्य होती है। ऐसी सभी गतिविधियों को समन्वित रूप से पाठ्यचर्या में प्रस्तुत करने की आवश्यकता है।

इस स्तर पर बच्चे अपने आसपास की चीज़ों के गहन अवलोकन और सही वर्णन की आदत भी विकसित कर सकते हैं। वे शारीरिक स्वच्छता, विशेषकर दाँत साफ़ करने और स्वच्छ कपड़े ढंग से पहनने के कौशल भी हासिल कर लेते हैं। अब बच्चों को औपचारिक स्थिति में सही व्यवहार और सही बोलचाल भी सीखना है। उन्हें सही ढंग से बैठना और खड़ा होना एवं औपचारिक ढंग से बातचीत करना भी सिखाना होगा।

तीसरी से पाँचवीं कक्षा

इस स्तर पर बच्चे बेहतर शारीरिक गठन और ज्ञानेंद्रियों के ज़रिए भेद करने की क्षमता अर्जित कर लेते हैं। वे 'स्वयं' के प्रति एहसास पैदा कर लेते हैं और स्वयं को एवं अपने आस-पास के पर्यावरण को जानने की क्षमता पाने लगते हैं। उनसे इस स्तर पर खेलों के अंतर्गत हलका व्यायाम और थोड़े संगीत के साथ ड्रिल कराई जा सकती है। यही वह स्तर है जब बच्चों को स्वास्थ्य, शक्ति और शारीरिक-सौंदर्य के संबंध में प्रारंभिक ज्ञान दिया जा सकता है। वे विश्राम करने की कला भी विकसित कर लेते हैं। बच्चों को भूख और प्यास से जुड़े संवेदनों पर नियंत्रण करने की कला सिखानी होगी और नियमित रूप से नित्यकर्म से निवृत्त होने की आदत डालनी होगी। वे अपने आस-पास की वस्तुओं के सौंदर्य की

सराहना कर सकते हैं, व्यायाम कर सकते हैं और चीज़ों और संगीत के प्रति अपनी पसंद ज़ाहिर कर सकते हैं। इस स्तर पर उपयुक्त और स्वस्थ जीवन के लिए उचित दृष्टिकोण का विकास करना होगा और शारीरिक स्वच्छता, अपने आसपास की स्वच्छता, वस्त्रों की स्वच्छता तथा बैठने और खाने की जगह की स्वच्छता रखने के लिए प्रोत्साहित करना होगा। बच्चे ऐसी गतिविधियों को पसंद करना भी शुरू कर देंगे जो खेलकूद से जुड़ी हों। उन्हें वे मौलिक आसन सिखाए जाएँगे जो योगाभ्यास की ओर ले जाते हैं। नकल उतारना (मिमिक्री) और तरह-तरह के वाद्ययंत्रों को बजाना भी उनके अनुभवों का हिस्सा होगा। इससे अपनत्व, स्नेह, मित्रता और सामाजिक समरसता की भावनाओं का पोषण होगा। चित्रकला, कोलाज, मिट्टी के नमूने, मुद्रण, मुखौटों का उपयोग, कठपुतली और खिलौने, लोकनृत्य, रंगोली, अल्पना आदि भी इस स्तर पर पाठ्यक्रम के अंग होंगे।

यह वांछनीय होगा कि शिक्षकों का प्रबोधन स्वस्थ और उत्पादक जीवन से जुड़ी गतिविधियों के लिए समेकित रूप से किया जाए। मुद्रित और अमुद्रित दोनों प्रकार की उपयुक्त शिक्षण-सामग्री, जैसे–शिक्षकों को संबोधित पोस्टर बच्चों को स्वस्थ और उत्पादक जीवन की शिक्षा देने के लिए बड़े मददगार साबित हो सकते हैं।

2.9 कार्य शिक्षा, कला शिक्षा, स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा : उच्च प्राथमिक और माध्यमिक स्तर

कार्य शिक्षा

कार्य शिक्षा को उद्देश्यपूर्ण और सार्थक शारीरिक मानवीय श्रम माना गया है, जो शिक्षण-प्रक्रिया के अंतरंग भाग के रूप में आयोजित किया जाता है। इसका परिणाम सामग्री के उत्पादन और समुदाय की सेवा के रूप में प्रकट होता है जिसमें आत्मसंतोष तथा आनंद का अनुभव भी होता है। यह शिक्षा के सभी स्तरों पर एक आवश्यक तत्व के रूप में सुनियोजित और श्रेणीबद्ध कार्यक्रमों के माध्यम से सिखाना चाहिए। इस क्षेत्र में जिन दक्षताओं का विकास किया जाएगा उनमें ज्ञान, समझ, व्यावहारिक कौशल और मूल्य आवश्यकता आधारित जीवन क्रियाएँ शामिल होंगी। जिन मुख्य कार्यश्रेणियों पर विशेष रूप से ज़ोर देना होगा वे निम्नलिखित हैं :

(क) ऐसे कार्य जो व्यक्ति के स्वास्थ्य, स्वास्थ्य विज्ञान (हाइजीन), वेशभूषा, स्वच्छता आदि से जुड़े हों,

(ख) परिवार में विकसित होने वाले सदस्य के रूप में घरेलू कार्य,

(ग) कक्षा और विद्यालय में किए जाने वाले कार्य और विद्यालय से बाहर के क्रियाकलाप

जो विद्यालयी जीवन और अन्य शिक्षण-विषयों के साथ समेकित हों, जैसे—शारीरिक शिक्षा, कला शिक्षा, सामाजिक अध्ययन, विज्ञान एवं अन्य, और ये कार्य विशेष रूप से कार्य शिक्षा के उद्देश्यों को हासिल करने की दृष्टि से तय किए गए हों,

(घ) समुदाय में कार्य जो निःस्वार्थ सेवा पर केंद्रित हों, और

(ङ) ऐसे कार्य जो व्यावसायिक विकास, उत्पादन, सामाजिक उपयोगिता और कार्यजगत की खोज से जुड़े हों।

कार्य शिक्षा की गतिविधियों का संयोजन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उनसे कार्य शिक्षा के उद्देश्यों को साकार किया जा सके, जैसे—शारीरिक श्रम के प्रति छात्रों में सम्मान की भावना पैदा करना, आत्मनिर्भरता के लिए मूल्य, सहकारिता की भावना, अध्यवसाय, सहायता करने की भावना, सहिष्णुता और कार्य-आचरण—ये तमाम उद्देश्य उन उद्देश्यों के अलावा हैं जो उत्पादक कार्य और सामुदायिक सरोकारों से जुड़े दृष्टिकोण और मूल्यों का विकास करते हैं। सिद्धांत और व्यवहार भी इस प्रकार के हों कि वे छात्रों को तथ्यों, अवधारणाओं और विभिन्न रूपों में कार्य-स्थितियों के अंदर निहित वैज्ञानिक सिद्धांतों को समझने योग्य बना सकें। वे कच्चे माल के स्रोतों को जानें, औज़ारों और उपकरणों के उत्पादन और कार्य-प्रक्रिया के इस्तेमाल को समझें, प्रौद्योगिक रूप से आगे बढ़ने वाले समाज की ज़रूरत के मुताबिक कौशल अर्जित करें और उत्पादक स्थितियों में अपनी भूमिका स्वयं सोचें और निश्चित करें। छात्रों में ऐसे कार्यक्रमों के ज़रिए कुछ कौशल विकसित करने होंगे, जैसे—पहचानना, चयन करना, व्यवस्थित करना और नवाचारात्मक तरीके विकसित करना। इनके अलावा अन्य कौशल, जैसे—अवलोकन, कुशलता के साथ अंग संचालन और कार्य-अभ्यासों में सहभागिता भी उनकी उत्पादक कुशलता को बढ़ाने के लिए विकसित करने होंगे।

उच्च प्राथमिक स्तर पर छात्र इतने परिपक्व हो जाते हैं कि वे कुछ ऐसे भारी काम कर सकें जिनमें ऊँचे हुनर और सुगठित शारीरिक शक्ति की ज़रूरत पड़ती है। प्राथमिक स्तर पर स्वस्थ और उत्पादक जीवन की शिक्षा के अंतर्गत गतिविधियों के माध्यम से शारीरिक श्रम के बारे में छात्रों का समुचित उन्मुखीकरण हो ही गया होगा। छात्रों को उत्पादक प्रक्रियाओं में अधिक भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करने और सोच-समझ के साथ अच्छी प्रकार से तैयार किए गए प्रोजेक्ट को समझने और लागू करने की दृष्टि से उक्त कार्यक्रमों को और अधिक सुदृढ़ बनाया जा सकता है। इन कार्यक्रमों के लिए जो पद्धति अपनाई जाएगी वह अवलोकन, कुशलतापूर्वक संचालन और कार्य अभ्यास पर आधारित होगी। इस स्तर पर कौशल सीखना और उनमें प्रवीणता प्राप्त करना प्राथमिक स्तर की तुलना में कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होगा। समुदाय के जीवन के साथ विज्ञान और प्रौद्योगिकी का समन्वय करने के लिए कृषि और प्रौद्योगिकी की प्रक्रियाओं पर ज़ोर देना होगा जो शिक्षार्थियों को कार्य क्षेत्र में प्रवेश करने

के योग्य बना कर उनमें विश्वास पैदा करे। ये क्रियाकलाप पोषण, व्यक्तिगत और सामुदायिक स्वास्थ्य, स्वच्छता, उत्पादकता और समुदाय की आर्थिक स्थिति की ओर आगे ले जाएँगे। इस प्रकार गतिविधियों के तीन आयाम होंगे—कार्य-स्थितियों का अवलोकन और कार्य-दायित्व की पहचान, कार्य-स्थिति में भागीदारी और बड़ी मात्रा में वस्तुओं का निर्माण। यह ज़रूरी है कि सभी क्रियाकलाप सरल और आनंददायी हों।

माध्यमिक स्तर पर आवश्यक क्रियाकलापों की प्रकृति को लगभग समान रखते हुए थोड़ी जटिलता बढ़ानी होगी। इस स्तर पर पूर्व-व्यावसायिक उपागमों को महत्त्वपूर्ण स्थान होगा जो उच्चतर स्तर पर व्यावसायिक उपागमों के चुनाव में सुविधा प्रदान करेंगे और छात्रों को कार्य-जगत में आवश्यक ज्ञान और कौशल अर्जित करके प्रवेश करने में मदद करेंगे।

यद्यपि अनेक शिक्षक, कार्य-शिक्षक के रूप में काम करेंगे, फिर भी बड़ी तादाद में इन क्रियाकलापों के लिए विशेषज्ञ व्यक्तियों की आवश्यकता होगी। जो शिक्षक कार्य शिक्षा देंगे, उनका समुचित प्रबोधन और प्रशिक्षण विशेष कार्यक्षेत्र में करना ज़रूरी होगा। कार्यक्रम को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए मनुष्य और सामग्री दोनों ही दृष्टियों से सामुदायिक संसाधनों का उपयोग वांछनीय होगा। समुदाय में उपलब्ध विशेषज्ञों की सेवाओं का उपयोग कार्यक्रम में उन्हें शामिल करके करना होगा।

कला शिक्षा

छात्रों के व्यक्तित्व के विकास के लिए पाठ्यचर्यागत क्रियाकलाप के रूप में कला शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। छात्रों में सौंदर्यानुभूति उत्पन्न करना कला शिक्षा का उद्देश्य है जिससे वे सौंदर्य के प्रति रेखा, रंग, रूप, गति और ध्वनि के संबंध में प्रतिक्रिया ज़ाहिर करने योग्य बनें। कला का अध्ययन और सांस्कृतिक विरासत साथ-साथ चल सकते हैं और वे एक दूसरे के प्रति समझ और उनके प्रति सराहना या आलोचना करने की प्रवृत्ति को पुष्ट करेंगे। ललित कलाओं के क्षेत्र में प्राथमिक स्तर पर जो अनुभव छात्रों ने *स्वस्थ और उत्पादक जीवन के लिए कला* विषय के अंतर्गत हासिल किए हैं, उनसे इस विषय के प्रति उनमें काफ़ी उत्साह पैदा होगा। लोक और शास्त्रीय दोनों ही स्तरों पर कलाओं की विविधता के प्रति चेतना एवं रुचि उत्पन्न करने के लिए उच्च प्राथमिक स्तर पर पाठ्यचर्या में कला-शिक्षण एक मुख्य उद्देश्य होगा जिससे कि शिक्षार्थी कलासर्जक और उसके आनंद को ग्रहण करने वाला—दोनों ही बनें। कला शिक्षा सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिए सर्वाधिक संतोषप्रद माध्यम है जिसके शिक्षण का महत्त्व समाज के सर्वोत्तम हित में अत्यंत आवश्यक है।

शिक्षा के सभी स्तरों पर, ललित कलाओं में भी, संगीत का विशेष स्थान है। संगीत बच्चे को लोरियों के माध्यम से पालने में ही लुभाने लगता है और आगे चल कर उनके संपूर्ण जीवन

पर छा जाता है। संगीत केवल जीवन की लय ही बच्चों को नहीं सिखाता बल्कि उनकी ललित भावनाओं, मूल्यों एवं मानक और आनंददायी उच्चारण ध्वनियों की पहचान भी सिखाता है।

उच्च प्राथमिक स्तर पर कला शिक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत चित्रकला सामग्री का संचालन एवं उपयोग, कोलाज बनाना, मिट्टी के नमूने और कठपुतली निर्माण, स्वतंत्र अभिव्यक्ति प्रणाली और विषय-विशेष प्रणाली द्वारा कलात्मक वस्त्रों का निर्माण, सरल संगीत उपकरणों का संचालन और उन्हें बजाकर स्वर-ध्वनियाँ निकालना, अंग-संचालन, स्वांग और सरल नृत्य शैलियाँ, सामुदायिक गायन, दृश्य और प्रदर्शनकारी कलाओं के प्रति सरल अवधारणाएँ, कला के क्षेत्र से जुड़े महान व्यक्तियों के किस्से-कहानियाँ और अन्य देशों से जुड़ी कथा-कहानियाँ, ये सब कला-शिक्षण के अंग होंगे। नाट्य संयोजन कला और अभिनय भी उचित प्रकार से शुरू करना होगा। स्वयं छात्रों की कल्पना और खोज के माध्यम से उनके विचार एवं उनकी अभिव्यक्ति पर भी ज़ोर देना चाहिए। छात्रों में रचना करने और संयोजन करने की क्षमता का विकास होना चाहिए अर्थात् सौंदर्यात्मक प्रबंध या व्यवस्था जो पूरे जीवन में व्याप्त हो जिससे कला का शाश्वत और गहरा आनंद महसूस किया जा सके।

माध्यमिक स्तर सौंदर्यबोध और सामाजिक मूल्यों के परिष्कार के लिए उपयुक्त है। यह कार्य प्राकृतिक और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण पर प्रोजेक्ट देकर और भारतीय संस्कृति के अध्ययन के अवसर प्रदान करके किया जाए। इसके अंतर्गत छात्र-छात्राएँ समुदाय के कलाकारों और कारीगरों के साथ उत्सवों का आयोजन करके और समुदाय के साथ त्योहार मनाकर, चित्रों के माध्यम से भौतिक पर्यावरण का प्रदर्शन करके और आसपास के प्राकृतिक दृश्य आदि दिखा कर कलात्मक रुचियों की अभिव्यक्ति कर सकेंगे। इस स्तर पर कला शिक्षा के अंतर्गत ये तत्व होंगे : दृश्य और श्रव्य संसाधनों का अध्ययन और उनकी तलाश, दृश्य और श्रव्य कला रूपों के कार्यों की सृजनात्मक अभिव्यक्ति और प्रदर्शन के लिए प्रोजेक्ट, अंतर्समूह और अंतर्विद्यालयी गतिविधियाँ, शैक्षिक यात्राएँ और समुदाय के कलाकारों से अंतर्क्रिया और समुदाय एवं पड़ोस में उपलब्ध पारंपरिक कलारूपों की खोज।

कला शिक्षा कार्यक्रमों को लोक कलाओं, स्थानीय विशेष कलाओं और अन्य कला तत्वों से छात्रों को परिचित कराने पर ध्यान देना होगा ताकि वे सांस्कृतिक विरासत के प्रति चेतना और उसकी सराहना कर सकें। गतिविधियों और कथानकों का चयन इस प्रकार किया जाए कि वे अन्य केंद्रिक घटकों से संबंधित मूल्यों को प्रोत्साहित करें, जैसे—भारत की समान सांस्कृतिक विरासत, स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास और पर्यावरण का संरक्षण। छात्रों की आत्माभिव्यक्ति और अनुभवों के विस्तार की दृष्टि से *करके सीखने* और विभिन्न कलाशैलियों से लगातार परिचय कराना अनिवार्य है। कला शिक्षा खंडित रूप से नहीं दी जानी चाहिए।

कक्षा दस तक के सभी चरणों में कला शिक्षा के लिए समन्वित या समेकित पद्धति ही अपनानी होगी।

स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा

स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा छात्र-छात्राओं और समुदाय के संपूर्ण स्वास्थ्य से संबंधित होगी। शिक्षार्थियों की शारीरिक सेहत के अलावा इसमें उनका मानसिक और संवेगात्मक स्वास्थ्य भी शामिल होगा। स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य छात्रों में पोषण, स्वास्थ्य और स्वच्छता के संबंध में वांछनीय समझ, दृष्टिकोण और क्रियाओं का विकास करना होना चाहिए जिससे स्वयं के स्वास्थ्य तथा परिवार एवं समुदाय के स्वास्थ्य में सुधार हो। सामुदायिक स्तर पर स्वास्थ्य और स्वच्छता के संबंध में चेतना तथा उस संदर्भ में उनकी भूमिका की समझ विकसित करने में छात्रों की मदद करनी होगी। शारीरिक शिक्षा में स्वास्थ्य, शक्ति और शारीरिक चुस्ती (फिटनेस) के विकास पर ध्यान देना होगा।

इस संपूर्ण योजना में खेलकूद को महत्वपूर्ण स्थान देना होगा। छात्रों के इस विकासात्मक चरण में उनके मानसिक और शारीरिक गठन के बीच पर्याप्त समन्वय पर बल देना चाहिए। नियमित विद्यालयी कार्यक्रम में योग और ध्यान-साधना का आयोजन बच्चों का ध्यान केंद्रित करने और शरीर को शिथिल कर विश्राम देने की दृष्टि से काफ़ी सहायक होगा। स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा से संबंधित अन्य महत्त्वपूर्ण गतिविधियाँ हैं—स्काउटिंग, गाइडिंग, एन.सी.सी. और रेडक्रास, जो छात्रों में कुछ ऐसे मूलभूत गुणों का विकास करेंगी, जैसे—सहनशक्ति, साहस, निर्णयात्मकता, उपाय-कुशलता अर्थात् काम करा लेने का हुनर, अन्य लोगों के प्रति सम्मान, सच्चाई, निष्ठा, कर्त्तव्य के प्रति आस्था और सामान्य लोगों के भले की भावना। छात्रों की इन सब गतिविधियों में सहभागिता से उनकी ऊर्जा का रचनात्मक ढंग से उपयोग किया जा सकेगा। ये सब गुण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षण को प्रोत्साहित और समेकित करते हैं। इससे संस्थाओं में पाठ्यचर्या संबंधी प्रच्छन्न तत्वों पर भी ध्यान दिया जा सकेगा।

स्वस्थ रूप से रहने, जीने और स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के समाधान की दृष्टि से सामान्य शिक्षा के इन दस वर्षों में ऐसी व्यवस्था प्रणाली का विकास करना होगा जो शरीर, मन और आत्मा के समन्वित विकास को प्रोत्साहित करे। बच्चों के लिए चिकित्सकीय निरीक्षण और स्वास्थ्य परीक्षण सभी स्तरों पर अनिवार्य हो ताकि यदि किसी प्रकार की कमी दिखाई दे तो उसके इलाज की व्यवस्था हो सके। स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा जिसमें खेलकूद भी शामिल हैं, संपूर्ण शिक्षण प्रक्रिया के अभिन्न अंग होंगे और उनके प्रदर्शन या निष्पादन का मूल्यांकन भी पाठ्यचर्या का अंग होगा।

उच्च प्राथमिक स्तर पर शारीरिक वृद्धि, शारीरिक-मानसिक गठन में समन्वय और सामाजिक विकास की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए शक्तिप्रद विकासात्मक एवं लयात्मक व्यायाम, व्यायामशालाओं में की जाने वाली कसरत, दौड़-कूद संबंधी व्यायाम (एथलेटिक्स), जलक्रीड़ाएँ (तैराकी), जूडो, योग, ड्रिल, कवायद, स्काउटिंग और गाइडिंग शिविर, विभिन्न प्रकार के टीम-खेल और प्रतियोगिताओं आदि में छात्रों को भाग लेने के अवसर देने होंगे। छात्रों की पसंद और सुविधाओं की उपलब्धता के आधार पर छात्रों को इनमें से कोई गतिविधि चुनकर उसमें भाग लेने की सुविधा होनी चाहिए। स्वास्थ्य शिक्षा के अंतर्गत छात्रों में सामान्य स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं, सुरक्षा उपायों, पोषण संबंधी समस्याओं, मिलावट, प्राथमिक उपचार, स्वच्छता, प्रदूषण आदि के बारे में चेतना पैदा करनी होगी। योग और प्राणायाम संबंधी व्यायामों पर विशेष ध्यान देना होगा।

जहाँ तक छात्रों के शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक स्वास्थ्य का संबंध है, माध्यमिक स्तर की शिक्षा विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस स्तर पर शारीरिक रचना और कार्यों में तेज़ी से वृद्धि और परिवर्तन परिलक्षित होते हैं जो यौन-पक्वता की शुरूआत से संबंधित हैं। इस अवस्था में समुचित मार्गदर्शन एवं परामर्श की ज़रूरत है ताकि बच्चे अपने विकास के साथ अपना समन्वय स्थापित कर सकें। इस अवस्था में उनकी रुचियाँ कुछ ही खेलों तक सीमित होने लगती हैं। छात्र अपेक्षाकृत अधिक साहसी होने लगते हैं। शारीरिक शिक्षा में अधिक ताकतवर गतिविधियों का समावेश होना चाहिए, जैसे—एथलेटिक्स, बड़े खेल (फुटबाल, हॉकी, क्रिकेट) स्वदेशी खेल (कबड्डी, खो-खो, आट्या-पाट्या), कसरत, यौगिक अभ्यास, ध्यान, कुश्ती, जूडो, तैराकी आदि। शारीरिक शिक्षा के अनिवार्य कार्यक्रमों के अतिरिक्त एन.सी.सी., स्काउटिंग गाइडिंग और सामाजिक सेवा भी पाठ्यचर्या के अंग होने चाहिए। नवीं और दसवीं कक्षाओं में शारीरिक शिक्षा में अधिक विस्तार के साथ व्यक्तिगत स्वास्थ्य, पर्यावरणीय प्रदूषण का स्वास्थ्य पर कुप्रभाव, भोजन और पोषण, बीमारियों पर नियंत्रण एवं उनकी रोकथाम, प्राथमिक उपचार, घरेलू परिचर्या और सुरक्षा उपायों आदि का शिक्षण छात्रों को दिया जाना चाहिए।

व्यक्तिगत और सामुदायिक स्वास्थ्य से संबंधित ज्ञान और क्रियाकलापों का अब बहुत महत्त्व है। एच.आई.वी. और एड्स के प्रति जागरूकता पैदा करनी होगी। विद्यार्थियों को यौन उन्मुक्तता, बाल दुराचार तथा मादक पदार्थों के सेवन से जुड़ी हुई बुराइयों से भी आगाह कराया जा सकता है। किशोरावस्था शिक्षा और समुचित यौन शिक्षा सावधानीपूर्वक देनी होगी। उपयुक्त तो यह होगा कि इस संबंध में विभिन्न आयु वर्गों के लिए छात्रों की आवश्यकता और बढ़ती परिपक्वता के अनुरूप स्व-शिक्षण सामग्री तैयार की जाए। यह सामग्री सभी छात्रों को उपलब्ध करानी होगी। इसके लिए पृथक शिक्षकों और कक्षाओं की आवश्यकता नहीं है। ऐसी पद्धति अपनानी होगी कि प्रत्येक छात्र-छात्रा इस प्रकार की शिक्षा में भागीदारी को और स्वस्थ जीवन के तरीकों को अपनाएँ।

2.10 शिक्षण युक्तियाँ

पाठ्यचर्या के प्रभावी उपयोग और पाठ्यचर्यागत उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए छात्रों की गतिविधियों का संयोजन उपयुक्त युक्तियों के द्वारा इस प्रकार किया जाए कि छात्रों को अधिगम क्रियाकलापों के लिए अधिक अवसर मिलें। शिक्षण युक्तियाँ कई प्रकार की हो सकती हैं, जैसे—अवलोकन, सामग्री और सूचनाओं का संकलन, प्रदर्शन और प्रयोग, प्रोजेक्ट कार्य, फील्डवर्क और संग्रहालयों, मेलों, औद्योगिक प्रतिष्ठानों तथा ऐतिहासिक महत्त्व के स्थानों की शैक्षिक यात्राएँ। खेलकूद, सामुदायिक गायन में भागीदारी, भूमिका-अभिनय, नाटक, परिचर्चा, वाद-विवाद, समस्या-समाधान, खोजपूर्ण शिक्षण, सृजनात्मक लेखन और पूरक वाचन भी संपूर्ण शैक्षिक युक्तियों के महत्त्वपूर्ण अंग होंगे।

किसी विशेष नीति का उपयोग करते समय अनेक तत्वों पर विचार करना होगा, जैसे—छात्रों की क्षमताएँ, संसाधनों की उपलब्धता, आरंभिक व्यवहार, विद्यालयी पर्यावरण, प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य, विषयवस्तु की प्रकृति और स्वयं शिक्षकों द्वारा की जाने वाली तैयारी एवं उनका विषयों पर अधिकार।

शिक्षण को सार्थक और ठोस बनाने के लिए प्राकृतिक और मानवीय दोनों ही प्रकार के निकटस्थ पर्यावरण का उपयोग होना चाहिए। प्रभावशाली शिक्षण तभी होता है जब शिक्षक छात्रों को सीखने की प्रक्रिया में शामिल करें और यह कार्य सुनने की प्रक्रिया से छात्रों को ऊपर ले जाकर चिंतन, तर्क और स्वयं करके सीखने की प्रक्रिया में शामिल करके संपन्न करना होगा। स्वाध्याय कौशल के विकास के लिए पुस्तकालय एवं स्रोत केंद्रों के प्रयोग को प्रोत्साहित करना होगा।

अध्ययन-अध्यापन की युक्ति में नियमित रूप से प्रतिपुष्टि प्राप्त करना एक अंतर्निहित घटक है। नियमित प्रतिपुष्टि के लिए सतत और व्यापक मूल्यांकन की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। इसका उपयोग उपचारात्मक शिक्षण के लिए होना चाहिए।

मंद, औसत और तीव्र गति से सीखने वाले भिन्न-भिन्न छात्रों के लिए भिन्न-भिन्न कार्यनीतियाँ ज़रूरी हैं। निदानात्मक और उपचारात्मक शिक्षण का उपयोग मंदगति के छात्रों के लिए आवश्यक है। ज्ञान-संवर्धन की सामग्री और लक्ष्य निर्देशित अध्ययन-अध्यापन की युक्तियाँ तीव्र गति से सीखने वाले छात्रों की मदद करेंगी। सहशैक्षिक क्षेत्रों के शिक्षण के लिए उपयुक्त कार्यनीतियों का चुनाव करना होगा और उन्हें छात्रों के व्यक्तित्व-निर्माण में उचित महत्त्व देना होगा। अनेक विद्यालयी गतिविधियाँ समुचित योजना एवं सुनियोजित लक्ष्यों के साथ आयोजित की जा सकती हैं, जैसे—प्रातःकालीन सभा, सांस्कृतिक और मनोरंजक

क्रियाकलाप, विद्यालय की सजावट एवं सौंदर्यीकरण, सामुदायिक जीवन के क्रियाकलाप, राष्ट्रीय महत्त्व के दिवसों को मनाना, विशेष दिवस और सप्ताह तथा सृजनात्मक कार्यक्रम।

2.11 शिक्षण का माध्यम

बच्चों के बौद्धिक, संवेगात्मक और आध्यात्मिक विकास के लिए मातृभाषा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। मातृभाषा केवल इसलिए 'मातृभाषा' नहीं है कि वह माता की भाषा है बल्कि इसलिए कि वह माँ की ही तरह है। अतः मातृभाषा बच्चों के पोषण एवं मानसिक और संवेगात्मक निर्माण के लिए एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण केंद्रीय तत्व है। उनकी समझ, उनके अवबोध, उनकी प्रतिक्रियाएँ, सृजनात्मक अभिव्यक्तियाँ, चिंतन और विश्लेषण सभी कुछ अधिकतम मातृभाषा के माध्यम से ही तो विकसित होते हैं। इसलिए विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरों पर मातृभाषा के माध्यम से शिक्षण करना एक स्वाभाविक और आदर्श स्थिति होगी।

जिन छात्रों की मातृभाषा क्षेत्रीय भाषा या राज्य की भाषा है, वहाँ वहीं की भाषा विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरों या कम-से-कम प्राथमिक स्तर के अंत तक शिक्षा का माध्यम होगी। जहाँ छात्रों की मातृभाषा राज्य या क्षेत्र की भाषा से अलग है, वहाँ क्षेत्रीय भाषा को तीसरी कक्षा और उससे आगे के स्तर से माध्यम के रूप में अपनाया जा सकता है। प्रारंभिक वर्षों में छात्रों की मातृभाषा का उपयोग इस प्रकार हो कि छात्र बड़ी सरलता के साथ मानक मातृभाषा (क्षेत्रीय भाषा) में संक्रमण या प्रवेश कर सकें और क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से शिक्षण जल्दी-से-जल्दी शुरू हो सके।

2.12 शिक्षण अवधि

विद्यालयों में शिक्षण कार्य के लिए निर्धारित कार्य दिवस सुनिश्चित करने के लिए सभी प्रकार के प्रयास करने होंगे। अनिश्चित कारणों से शिक्षण अवधि की कमी या नुकसान को बेहतर शिक्षा प्रबंधन के ज़रिए रोकना या घटाना होगा। मूल्यांकन गतिविधियाँ जाँच (टेस्ट) परीक्षा, विद्यालयी कार्यक्रम और उत्सव आदि सभी के लिए आवश्यक दिनों का हिसाब लगाते हुए कम-से-कम 180 दिवस वास्तविक विद्यालयी शिक्षण के लिए उपलब्ध होने ही चाहिए।

शिशु शिक्षा केंद्रों या शाला-पूर्व शिक्षा केंद्रों को दिन में तीन घंटे काम करना चाहिए। एक प्राथमिक विद्यालय को पाँच घंटे प्रतिदिन कार्य करना चाहिए जिसमें से चार घंटे केवल अध्यापन के लिए हों और शेष अन्य दैनिक गतिविधियों के लिए। उच्च प्राथमिक और

माध्यमिक शिक्षा के लिए शिक्षण अवधि प्रतिदिन छह घंटे की होगी जिसमें से पाँच घंटे केवल अध्यापन के लिए निर्धारित होंगे और शेष अन्य गतिविधियों के लिए। प्रत्येक कक्षा के एक कालखंड की अवधि लगभग चालीस मिनट की होगी।

विद्यालयों को ज़ोर देकर यह भी बताना होगा कि प्रत्येक विषय को पर्याप्त कालखंड उपलब्ध हों। जो समय एक विषय या गतिविधि के लिए निर्धारित है उसका अतिक्रमण व्यक्ति या संस्था की मरज़ी से विभिन्न विषयों के 'महत्त्व' के संदर्भ में नहीं होना चाहिए।

2.13 मुक्त शिक्षण प्रणाली

मुक्त शिक्षण प्रणाली विद्यालय और विश्वविद्यालय दोनों स्तरों पर स्थापित हो चुकी है। केंद्रीय स्तर पर राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय और राज्य स्तर पर राज्यों के अपने-अपने मुक्त विद्यालय कार्य कर रहे हैं। मुक्त शिक्षा प्रणाली के उद्देश्य कथन में यह कहा गया है कि मुक्त शिक्षण प्रणाली शिक्षा को शिक्षार्थी के घर की देहलीज़ तक ले जाती है, सामाजिक समानता को भी बढ़ावा देती है और आजीवन शिक्षा के लिए लचीलापन पैदा करती है। यह प्रणाली विद्यालय स्तर पर कंप्यूटर, रेडियो और टेलीविज़न कार्यक्रमों के माध्यम से सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के साथ-साथ अनेक संरचनात्मक छूट देती है जो पारंपरिक औपचारिक प्रणाली से बेहतर हैं। यह लचीलापन शिक्षण-स्थल, शिक्षण-समय, पात्रता, मानदंड, विषयों के चुनाव के प्रति छात्रों की पसंद और परीक्षा योजना आदि से जुड़ा हुआ है। सेतु पाठ्यक्रमों, आधार पाठ्यक्रमों और भेदभावरहित पाठ्यक्रमों के ज़रिए मुक्त शिक्षण प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए बड़े पैमाने पर योगदान दे सकता है। यह शिक्षा छात्रों को विशेष रूप से आत्मविश्वासयुक्त व्यक्ति तथा राष्ट्र निर्माण में योगदान देने वाले नागरिकों के रूप में विकसित होने के लिए आवश्यक कौशल उपलब्ध कराएगी।